वैदिकधर्म

मई

१९६८

५० पैसे

वैदिक धर्म

वर्ष ४९ : अंक ५ : वैशाख : २०२५

स्वामी— स्वाध्याय-मंडल, पारडी [जि. बलसाड]

प्रधानसंपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, तर्कशिरोमणि

वि ष या नु क्र म णि का

१	धनोंका जेता	[वैदिक प्रार्थना]	५७
२	ऊषा अनिरुद्ध	श्री देवकीनन्दन सिंह	५८
३	जलकी महान् समस्याका समुचित हल	पं. वीरसेन वेदश्रमी	६०
४	विरह	श्री देवकीनन्दन सिंह	६४
५	पं. सातवलेकर जीवन-प्रदीप	मूल लेखक— श्री पु. पां. गोखले अनु०— श्री श्रुतिशील शर्मा	७३ से ९६
६	आयुर्विज्ञान अथवा स्वास्थ्य-धर्म	डॉ. विश्वमित्र	८९ से ५६
७	ऋग्वेदका सुबोध भाष्य	पं. श्री. दा. सातवलेकर	११३ से १२०
			१ से ८

'वैदिक धर्म' वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६१, विदेशके लिये रु. ६.५० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

वैदिकधर्म

धनों का जेता

अहं भुवः वसुनः पूर्व्यस्पतिः
अहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवः
अहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥
(ऋ. १०।४८।१)

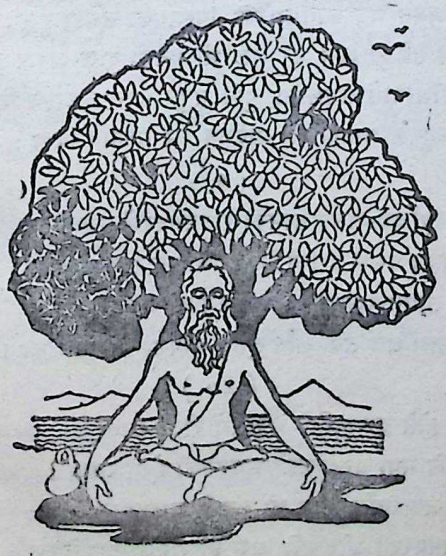

(अहं) मैं (भुवः वसुनः) सम्पूर्ण धन ऐश्वर्योंका (पूर्व्यः पतिः) सबसे पहला स्वामी हूँ, (अहं धनानि) मैं धनोंको (शश्वतः सं जयामि) निरन्तर जीतता हूँ, (पितरं न) जिस प्रकार पुत्र पिताको पुकारता है, उसी प्रकार (जन्तवः) प्राणिमात्र (मां हवन्ते) मुझे पुकारते हैं, (अहं) मैं (दाशुषे भोजनं वि भजामि) दानशीलको भोजन देता हूं।

परमात्मा सब ऐश्वर्योंका स्वामी है, वह धनोंको निरन्तर जीतता है। सभी प्राणी उसीकी उपासना करते हैं, वह भी दान देनेवालेको ही ऐश्वर्य प्रदान करता है।

ऊषा अनिरुद्ध

चतुर्थ सर्ग

लेखक— श्री देवकीनन्दन सिंह

[बाणासुरकी कन्या उषा और भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धकी कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। यह कथा वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टया बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसी कथाके आधार पर कविने एक महाकाव्यका प्रणयन किया है, उसी महाकाव्यका एक सर्ग यहां प्रस्तुत है।]

(१)

जय गणपति जय, जय जगदम्बे, जय शिवशंकर वरदानी,
जय गुरुवर ऋषिवर दुर्वासा, योगशास्त्र ब्रह्मज्ञानी।
पद-कमलोंका मिले सहारा, सफल मनोरथ हो जाऊं,
ऊषा हित में काम कुंवरको, शोणितपुर तक पहुंचाऊं ॥

(२)

सम्भव है जागृत होने पर, संग चलना स्वीकार न हो,
असुरसुतासे पाणिग्रहणका, उनके हृदय विचार न हो।
ऊषाके जीवन रक्षा हित, कृष्ण भवनमें जाना है,
सर्वेश्वर सर्वज्ञ अखिलपति, पौत्र चुराकर लाना है ॥

(३)

यदि भगवानको भक्तोंका लगता है अश्रु बिन्दु प्यारा,
उषाके दृगसे बहती है नित अविरल जलकी धारा।
एक बिन्दुके बदलेमें प्रभुको धारा प्यारी होगी,
प्रभुप्रसाद अनिरुद्ध मिलेंगे ऊषा आभारी होगी ॥

(४)

मुरलीधर गिरधर, नटनागर, माखनचोर कन्हैया वे,
रासविहारी गोपालन अब यदुकुलके यदुरैया वे।
राधाजीके प्रेमहेतु जन्मस्थल प्रभुने छोड दिया,
गुरुजन पुरुजन मातुपिताका सबका नाता तोड दिया ॥

(५)

वही प्रीतिकी रीति नीति क्या आज हरी न पालेंगे,
ऊषा और अनिरुद्ध मिलनमें, कभी न बाधा डालेंगे।
उतनेमें कमनीय युवकको, शैय्या पर सोते देखा,
रूप अनुपम लगी देखने, रूपविभोर चित्रलेखा ॥

(६)

स्वप्नमूर्तिके नखशिख वर्णन, पर उसने जब ध्यान दिया,
ऊषाके हृदयेश्वरको ऋषिशिष्याने पहचान लिया।
शयन कक्षमें तब उसने, निज योगकला बल दिखलाया,
निद्रित कामकुमार उठाकर, रथ पर लाकर बिठलाया ॥

(७)

मनोयामिनी मनोवेगसे, शोणितपुरकी ओर चली,
रोमावलियाँ पुलकित थीं औ खिली हृदयकी कंजकली।
किया शंखध्वनि पुलकित होकर, ज्यों ही नगर प्रवेश किया,
ऊषाके हृदवेदनको, निष्कासनका आदेश दिया ॥

(८)

खुले नयन जब कामात्मजके, विस्मयका संचार हुआ,
समझ सके न क्षण भर कुछ भी मनको दुःख अपार हुआ।
ऋषिशिष्याने समझाया, पुनि मधुर सरल जलपान दिया,
वस्त्राभूषण अलंकारसे, सज्जित कर सम्मान दिया ॥

(९)

चन्दनचर्चित-सुमन तल्पको रतिमन्दिरमें सजवाया,
योगकला बलसे उसको, महलोंके अन्दर पहुंचाया।
रक्षा तत्पर रक्षकको, इस घटनाका अनुमान न था,
योगकला बल तब, आगन्तुकके आगमका ज्ञान न था ॥

(१०)

प्रातः होते द्वारावतिके महलोंमें रोदन छाया,
गया ले गया बाणपुत्रको भगवन्‌की ऐसी माया।
आये जब सर्वेश कृष्ण तो सबको आश्वासन देकर,
शोणितपुरकी ओर चले, प्रभु चतुरंगिणीसेना लेकर ॥

(११)

उधर कामसुतको सादर शैया पर शयन करा करके,
ऋषिशिष्या ऊषा समीप, हर्षित मन पंहुची जा करके ।
बोली ऐ ऊषे, नयनोंमे, क्यों अबतक सावन तेरे.
उठ करके शृंगार मिलनके, आये मनभावन तेरे ।।

(१२)

सुनते ही सखिकी बातें, हिय धडक उठा रोमांच हुआ,
संशय औ विश्वासबीच, दुःखपर सुःख आक्रान्त हुआ,
जब प्रियतमकी शयन कक्ष की ओर उसे संकेत मिला,
हुआ हृदय विश्वास अचल सच ही मन प्रेमनिकेत मिला ।।

(१३)

धन्यवाद कैसे दे सखिको, शब्द नहीं मिल पाते थे,
दृग कृतज्ञता अश्रु भरे थे, अधर नहीं हिल पाते थे ।
प्रियतम हित शृंगार करो, इतना कहकर सखि चली गयी,
लज्जा निर्जनमें मानों पड, कामदेवसे ली गयी ।।

(१४)

प्रियतम पदकी ओर चले अथवा नखशिख शृंगार करे,
रे मन बतला क्या पहिले, शृंगार करे या प्यार करे ।
आंखे तो सौन्दर्य प्रथम, मनमन्दिर तक ले आती हैं,
आकर्षित कर मनमहीपको, करना प्रेम सिखाती है ।।

(१५)

अतएव अलंकृत अंगोंको करना मनने स्वीकार किया,
किसका हो शृंगार प्रथम, पुनि मनने क्षणिक विचार किया ।
सर्व प्रथम जीवन धनसे, मिलनेवाले दृग खंजन दो,
बोल पडा मन री ऊषे, इनको ही पहिले अंजन दो ।।

(१६)

नमस्कार करनेवाले नित प्रियतम श्रम हरनेवाले,
करकमलोंमें मणिमय कंगन, प्रभुकी सेवा करनेवाले ।
जैसी जिसकी रही श्रेष्ठता, उस क्रमसे शृंगार किया,
नख शिख शोभाका दर्पण सम्मुख आ पुनः विचार किया ।।

(१७)

दर्पणमें छवि ऊषाकी रे लगती ऐसी बांकी थी,
क्षीर सिन्धुमें कमलाकी मानों कमनीया झांकी थी,
कभी नचाती नयन कभी तो, कंठ कपोत हिलाती थी,
चलती थी पग एक कभी तो कभी लौट पुनि आती थी ।।

(१८)

कभी दबाती अधर दशनसे, तीव्र किंकिनी ध्वनि सुनकर,
कभी दबाती चरनि धरनि पर, पायलकी रुनझुन सुनकर ।
रनिमन्दिर प्रियके समीप, लज्जानत बढती जाती थी,
हिय चंचल स्वासें चंचल कुछ भेद समझ न पाती थी ।।

(१९)

जिसके दर्शन हेतु सदा थे, चंचल नयन दृगंचलमें,
सम्मुख उसको देख आज, क्यों छिपते जाते अंचलमें ।
अंगोंमें रह-रह कर क्यों होते रहते स्पन्दन हैं,
पुलकावलियोंके द्वारा करते प्रियका अभिनन्दन हैं ।।

(२०)

लज्जा औ सौन्दर्यभारनत तल्पपार्श्व में खडी हुई,
घूघट पटकी ओट आँख थी; प्रियतम मुख पर पडी हुई ।
आँखे आंखोंसे मिलते ही, मधु प्रहार कर देती हैं,
हार मान लज्जित हो झुककर मन बस कर लेती है ।।

(२१)

हृद कर्पन सिहरन अंगडाई अंगोंमे मीनाक्षीके,
भृकुटि मरोर तिरीछी चितवन कामव्यथाके साक्षी थे ।
मधुर स्वरोंमें बोलपडे अनिरुद्ध देवि आसन ले लो,
एक अपरचित नव आगन्तुक हित कष्ट न इतना झेलो

(२२)

सुनकर प्रियतम की बातें, मधु व्यंग और परिहास भरी,
बोली वह कोकिलकण्ठी सस्मित मुखभृकुटि विलासभरी ।
स्वप्निल जगके इसी अपरिचितसे चिर परिचित दासी हैं,
इस मन्दिरका नव आगन्तुक, मन मन्दिरका वासी है ।।

(२३)

ऊषाके मृदु उत्तरसे अन्तरमे यह उद्‌गार उठा,
स्वप्नमूर्ति तुम मेरी हो कामात्मज हृदय पुकार उठा ।
मिला हृदयसे हृदय रहा जो स्वप्न आज साकार हुआ
विरह तरनिसे तप्त कुमुदनीको शशिका साक्षात्कार हुआ ।।

जलकी महान् समस्याका समुचित हल

लेखक— पं. वीरसेन वेदश्रमी, वेदविज्ञानाचार्य

वर्त्तमान वैज्ञानिकोंकी गणनानुसार (१) पृथिवीसे १० मील तकके ऊपरके प्रदेशका तापमान –५५° सेन्टीग्रेड है तथा इससे भी १० मील ऊपरके प्रदेशमें –६३° सेन्टीग्रेड है। अर्थात् पृथिवीसे बीस मीलतकके क्षेत्रका तापमान भूपृष्ठके तापमानसे क्रमशः न्यून होकर -६३° सेन्टीग्रेड तक है। (२) पुन इस प्रदेशसे ऊपरके १० मीलके प्रदेशमें तापमान वृद्धिको प्राप्त होकर +१०° सेन्टीग्रेड हो जाता है। (३) इसके पश्चात् पुनः २० मील ऊपर अर्थात् पृथिवीसे ३० मीलसे ५० मीलके मध्यके व्योमका तापमान न्यून होकर –९०° सेन्टीग्रेड हो जाता है। (४) इसके आगेके क्षेत्रमें पुनः तापमान बढता जाता है। (४) इस प्रकार ७० मीलपर + ८०°, १५० मीलपर + ७५०° और पृथिवीसे ३०० मील ऊपरके व्योममें +२३००° सेन्टीग्रेडका ताप प्राप्त होता है।

इन सब तापोंकी भिन्नता आकाशके विविध स्तरोंके कारण ही है और तापोंकी भिन्नता मध्यस्थित सूक्ष्मतत्त्वोंके कारण जो कि सूर्य रश्मियों एवं मध्यवर्ती तापोंकी किन्हीं कारणोंको अपनेमेंसे प्रवाहित कर देते हैं, किन्हींको आत्मसात् कर लेते हैं और किन्हींको इतस्ततः प्रक्षिप्त कर देते हैं तथा किन्हींको प्रत्यावर्तित कर देनेका सामर्थ्य रखते हैं। वर्तमान वैज्ञानिकोंने आकाशकी इस विविध स्थितिको अनुभव करके पृथिवी-मण्डलके आकाश प्रदेशको निम्न पांच विभागोंमें विभक्त किया है—

(१) ट्रोपोस्फियर– ऋतु प्रभाववाला यह अन्तरिक्ष है जो पृथिवीसे लगभग २५ किलोमिटर ऊपर तक है। इसमें वायुकी प्रधानता है। घनीभूत वायु इस प्रदेशमें है।

(२) स्ट्रेटोस्फियर– ऋतुप्रभाव न्यूनवाला यह प्रदेश है। यहाँ ताप भी न्यून है। यह ७० किलोमिटरतकका क्षेत्र है। बर्फीली वायु इसके निचले प्रदेशमें शान्त रूपसे बहती है। परन्तु इस बर्फीली वायु इसके निचले प्रदेशमें शान्त रूपसे बहती है। परन्तु इस बर्फीली वायुसे ऊपरके प्रदेशमें ओजोन तत्त्वकी प्रधानता होनेसे वह ओजोन सूर्यकी अल्ट्रावायलेट किरणोंको अपनेमें शोषण करनेसे गर्मीको अपनेमें आत्म सात् करनेके कारण कुछ ताप वहाँ बढ जाता है।

(३) आयनोस्फियर– यह पृथिवीसे ४०० किलो-मीटरतक है। यहां परमाणु और मोलीक्यूल्स, आयनमें परिवर्त्तित होते हैं जो परस्पर आदान प्रदानके द्वारा विद्युत् चार्जिग करते हैं। तत्त्वोंके परमाणुओंमें यहां बुभुक्षित स्थिति होती है। बुभुक्षा ही आयन स्थिति है। विद्युत् चुंबकीय तरंगें (इलेक्ट्रोमेगनेट वेव्स), विद्युन्मय ध्वनि तरंगे (रेडिओ वेव्स) जो पृथ्वीसे प्रसारित होनेपर अन्तरिक्षम सर्पण करती हुई जब इस बुभुक्षित व्योमस्तर (आयनो-स्फियर) पर पहुंचती हैं तो उनसे टकराकर पुनः पृथिवीकी ओर प्रत्यावर्त्तित हो जाती हैं। इसीके आधार पर रेडिओ, टेलीविजन, रेडार आदिकी क्रिया सम्पन्न होती है।

(१) मेसोस्फियर– १००० किलोमीटरतकका क्षेत्र है इसमें तापकी उत्तरोत्तर वृद्धि है।

(५) एक्सॉसस्फियर– यह ६००० किलोमीटर-तकका पृथिवीसे ऊपरका अन्तरिक्षका भाग है जहां तक पृथिवीकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति कार्य करती है।

आकाश–व्योम–की यह विविधता या भेद तथा तापोंकी विभिन्न स्थितियां आकाशमें विविध तत्त्वोंके चयनके ही

श्री पृथिवेन्द्र प्रकाश अनुसंधान कोटी,
धनितरा, अलाहाबाद, (भारत)

कारण हैं। मध्यका पोला आकाश जिसे हम समझते हैं उसमें अनेक तत्त्व सूक्ष्मवाष्प (गैस) रूपमें अपने न्यूनाधिक भारके कारण ऊपर नीचे स्थित हैं। वेदने सृष्टि निर्माणकी विविध इष्टकाओंके चयनका वर्णन करते हुए बताया है कि- "व्योमाः सप्तदश"- (यजु. अ. १४। मं. २३) अर्थात् व्योम (आकाश) की १७ प्रकारकी स्तरें होती हैं।

वेदमें बताया है कि सृष्टि निर्माणमें २८ प्रकारकी ऐसी इष्टकाओंका चयन किया गया है जो मृत्युके कारणभूत तत्त्वोंके उस अनिष्टकारक प्रभाव एवं क्रियाओंको नष्ट, मूर्छित या वशीभूत कर लेती हैं जिनसे हमारी पृथिवीस्थ प्राणियोंका या तत्त्वोंका विनाश होता है। इनके ही कारण विविध प्रकारसे हमारे प्राणोंकी उनके अभीष्टकारक प्रभावसे रक्षा होती है। यदि मध्य स्थानमें ये रक्षक इष्टकायें न हों तो सूर्य तथा अन्य तत्त्वोंके अनिष्टकारक प्रभावका हमसे सीधा सम्बन्ध हो जानेपर हमारे लिये घातक प्रमाणित हो जाता हैं। जिससे हमारा जीवन नष्ट हो सकता है और "जीवेम शरदः शतः"- का लक्ष्य भी उच्छेद हो सकता है।

सूर्यकी रश्मियां यदि अन्तरिक्षके विविध तत्त्वोंके स्तरोंमेंसे सर्पण करके हमारे निकट न आकर सीधी ही आजावें तो उनके तीव्रतापको हम क्षण भरके लिए भी कदापि सह न सकेंगे। अतः इस अन्तरिक्षके मध्यवर्ती व्योम स्तरोंमें जो विशिष्ट-विशिष्ट प्रकारके तत्त्व है वे सूर्य रश्मियोंके तापोंको अपनेमें धारण करके तथा कतिपयको प्रत्यावर्त्तित करके हमारे लिए सौरशक्तिको जीवनोपयोगी रूपमें प्राप्त करानेमें सहायक होते हैं। अतः इनके इस चयनको मृत्युमोहिनी इष्टकाओंके नामसे वेदमें कहा गया है। ये मृत्युमोहिनी इष्टकायें २८ प्रकारकी होती है उनमेंसे तृतीय प्रकारकी इष्टकायें व्योमकी हैं जिनको कि वेदने १७ प्रकारकी बताया है। यह वर्तमान विज्ञानके अन्वेषणके लिये प्रेरणा दे रहा है।

ऊपरके ताप स्तर अन्तरिक्षमें विविध तत्त्वोंके कारण ही निर्मित हैं। पृथिवीस्थ तापमानसे ऊपरका तापमान कम होनेसे जो जल पृथिवीसे वाष्परूप होकर उड कर ऊपर जाते हैं उनको शीतलतापमान मिलनेसे, वह वाष्प मेघ रूपमें परिवर्तित होकर तथा शीतल होकर वर्षाके रूपमें पृथिवी पर आजाती है तथा वह वाष्प इस प्रकार अधिक ऊपरके प्रदेशमें जानेसे रुक जाती है।

यदि इस मध्यके प्रदेशका ताप किसी कारणसे बढ जावे तो पृथिवीसे उठी वाष्पको शीतलताकी प्राप्तिके अभावमें मेघरूप धारण करनेका अवसर ही प्राप्त न हो सकेगा और वे जल अन्तरिक्षमें और भी ऊपर पहुँचकर अधिक उष्णता-मानको प्राप्त होकर हमारी पृथिवीकी परीधिसे भी बाहर हो सकते हैं। इस प्रकार पृथिवी पर अवर्षण या न्यूनवर्षणकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

निरन्तर अवर्षणकी स्थितिसे पृथिवीके कण सूर्यतापसे दग्धताको प्राप्त होकर अपनी उर्वरा शक्ति एवं संघभावको त्याग कर, विघटित होकर, मरु अवस्थाको प्राप्त होने लगते हैं। अतः पृथिवीकी उत्पत्ति सामर्थ्य युक्त बनाये रखनेके लिए अन्तरिक्षके भी तापको यथोचित प्राकृतिक अवस्थामें बनानेका प्रयत्न करना होगा।

अन्तरिक्षको स्वाभाविक स्थितिमें बनाये रखनेके लिये तथा उसको क्षोभित, हिंसित या त्रुटित न करनेके लिए वेदने कहा- "द्यां मा लेखीः अन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभव।" (यजुः अ. ५। मं. ४।३) अर्थात् द्युलोकके प्रकाशमय तत्त्वों एवं उनकी रश्मि तथा तरंगोंकी हिंसा मत करो। अन्तरिक्षमें जो विविध प्रकारसे चयन द्वारा स्तरोंका निर्माण है उसे मत बिगाडो और दोनोंको अहिंसित रखते हुए उनको पृथिवीके उपयोगके लिए संयुक्त करो।

अर्थात् ऐसे ताप एवं क्रियायें जो अन्तरिक्षस्थ हमारे रक्षक व्योमस्तरों-चयनों-काही विध्वंसन करनेवाले हैं उनके प्रयोग एवं व्यवहारसे अवर्षणकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः वेदने वर्षाके लिए अन्तरिक्षके आतपविज्ञानको जाननेका संकेत-'आतप्याय- शब्दके द्वारा किया है।

(५) मेघविज्ञान

वर्षाके लिये आतपविज्ञानके जाननेके पश्चात् मेघ विज्ञान का भी ज्ञान होना चाहिए। अतः वेदने- "नमो मेघ्याय च" कहा है। अर्थात् गर्भस्थापक पर्जन्यरूपी बादल और वर्षणशील मेघरूपी बादलोंके भेदको जानते हुए उनके वर्षणकाल एवं वर्षाकी मात्राका भी ज्ञान होना चाहिये।

मेघ, वर्षण योग्यता रखनेवाले बादलोंकी संज्ञा है। इन्हींको वारिद, पयोद, वारिवाह, जलधर, अम्बुभृत्, जलमुच् आदि नामोंसे कहा गया है। पर्जन्य, एवं अभ्ररूपी बादलोंको पयोधर, वारिद आदिमें परिणत करना तथा पयोधर, वारिद आदि

बादलोंको धाराधर, मेघादिमें परिणत करके इन सबको बरसाके योग्य बनानेका विज्ञान मेघ विज्ञानके अन्तर्गत है।

जब हम मेघवाची शब्दों पर दृष्टिपात् करते हैं तो उनसे मेघोंकी अनेक स्थितियोंका ज्ञान प्राप्त होता है। बादलोंका नाम धूमयोनि है। धूमसे ही बादलोंका निर्माण होता है। जलीय वाष्प भी जलोंका धून्र है यह तो मूल कारण है ही तथापि-"अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रं अभ्राद् वृष्टिः" – इस शास्त्रवचनसे यद्यपि जलीय धून्रका ग्रहण भी हो सकता है तथापि प्रचलित धून्रका इससे ग्रहण किया ही जाता है। इस धून्रमें कार्बनद्विओषित गैस होती है। यही गैस बादलोंके निर्माणमें तथा उनके बरसानेमें भी सहायक होती है। अतः बादलोंकी प्रथम स्थितिका नाम-'धूमयोनि' – उपयुक्त है।

द्वितीय स्थिति इसकी 'धूमादभ्रं'– के अनुसार तथा 'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः' के अनुसार 'अभ्र एवं पर्जन्य स्थिति है। पृषुसेचने धातुसे पर्जन्य शब्द बनता है अतः अन्तरिक्षमें धूमका प्रथम सेचन कर्म गर्भ धारणार्थ होनेसे बादलकी द्वितीय स्थिति पर्जन्य रूपसे निर्मित होती है। यही पर्जन्य पितारूप होनेसे सेचन कर्मका मूल है। इस द्वितीयावस्थामें जब धूमयोनि, पर्जन्य स्थितिमें प्रकट होते हैं तो गतिशील होनेसे अभ्रसंज्ञक है। अभ्रसंज्ञक स्थितिमें जो श्वेतवर्णके बादल उत्पन्न होते हैं उनमें जलीय कार कम होनेसे वायुके द्वारा तथा तापके द्वारा भी इधर उधरसे विशेषरूपसे लेजाये जाते हैं। वे एक स्थानपर प्रकट होते हैं पुनः आयतनमें बडे भी हो जाते हैं और कुछ ही क्षणमें वे वहीं विलीन एवं अदृश्य भी हो जाते हैं। ये पर्जन्य एवं अभ्रसंज्ञक बादल 'जीमूत' संज्ञक भी हो जाते हैं जब कि वे अपने आयतनमें बढ कर आकाशमें छा जाते हैं। 'जयति नभः'– आकाशको अपनी व्याप्तिसे आच्छादित करके जीत लेते हैं अतः जीमूत संज्ञक हो जाते हैं। तथा जीयते वायुना ये वायुसे जीते हैं वायुके बिना मेघोंका जीवन नहीं है अतः भी जीमूत संज्ञक हो जाते है तथा– जीवनस्य (जलस्य) मूतः (पटबन्धः)– पानीकी गठरीके तुल्य आकारमें विचरण करते हैं अतः भी जीमूतसंज्ञक यह द्वितीय स्थिति है।

तृतीय स्थितिमें जब उन श्वेत अभ्र या जीमूतमें कुछ श्यामलता दिखाई पडती है। वाष्पका जलरूपमें परिवर्तनका लक्षण प्रकट होनेसे उनको वारिवाह– जलको वहन करनेवाले, जलधर– जलको धारण करनेवाले तथा अम्बुभृत्– जलके भरण करनेवाले कहा जाता है।

जब उन बादलोंमें और भी अधिक श्यामलता एवं घनत्वकी वृद्धि उत्तरोत्तर होती जाती है तो वे बादल एक दूसरे पर अनेक पर्त्तोंमें घनीभूत होकर दिशा विशेषमें स्थिर होजाते हैं। इनके इसी स्थिर भावके कारण ही इन्हें 'बलाहक' संज्ञा दी जाती है। बलाहकका अर्थ है– बलं कंपनं आजहाति-जो कम्पनको छोड कर स्थिर होकर जम जाते हैं। तथा घन–का अर्थ घनत्व, गाढा, दृढ, भरा हुआ बहुपुर युक्त तथा विशेष दबाव युक्त है। बादलोंमें यह स्थिति प्रारंभसे ही उत्पन्न नहीं होती। जब अनेक पर्तवाले बादल किसी स्थान विशेषमें एकत्र होकर स्थित हो जाते हैं और उनमें वाष्प घनीभूत होकर तथा शीतल होकर श्याम मेघमालाके रूपमें दृष्टिगोचर होती है तो वे घन एवं बलाहक संज्ञक होते हैं। यह चौथी अवस्था बादलोंकी है।

पांचवीं अवस्था तब उत्पन्न होती है जब इन घनसंज्ञक बादलोंमें बिजली उत्पन्न होती है और चमकती है। इस स्थितिमें उनकी स्तनयित्नु तथा तडित्वत् संज्ञा है। स्तनयित्नुकी स्थिति उत्पन्न होने पश्चात् ही घन गर्जना सुनाई पडती है। जब मेघोंमें गर्जना होती है तो वे 'आवा'–संज्ञक होती है।

मेघोंमें विद्युत्की उत्पत्ति एवं गर्जनासे जलोंका निर्माण कार्य प्रारंभ होजाता है। इससे छठी स्थिति वारिद या अम्बुद संज्ञक है। वारिद एवं अम्बुद शब्दोंका अर्थ जलको देनेवाले मेघ हैं। सभी बादल या उनकी सभी अवस्थायें जलवर्षा नहीं कर सकती हैं। उन्हें क्रमशः पूर्वोक्त स्थितियोंको प्राप्त कर इस छठी अवस्थामें वारिदकी योग्यता प्राप्त करनी पडती है।

इस योग्यताको जब बादल प्राप्त हो जाता है और जलोंको अपने स्थानसे बरसाना प्रारंभ करता है तो सातवीं स्थितिमें वे जलमुच् संज्ञक होते हैं। अर्थात् जलोंको छोडने, त्यागने या वर्षानेवाला। बादलोंने पानी छोडा–वे जलमुच् स्थितिमें आगये और जब वही जल वृक्ष, वनस्पति एवं पृथिवीको प्राप्त होकर उसे सिंचित करता है तो वे ही जलमुच् संज्ञक बादल मेघ, मेद–सिंचन करनेके अर्थवाले हो जाते हैं।

इसप्रकार क्रमशः बादलोंकी स्थितिका ज्ञान प्राप्त होनेसे समस्त बादलोंको मेघरूपमें परिणत करनेका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जिन बादलोंमें घन स्थिति उत्पन्न नहीं हो रही है उनमें किन द्रव्योंके धूम्रसे घन स्थिति उत्पन्न होगी। घनकी स्थिति मात्र होनेपर यदि उनमें विद्युत् स्फुरण नहीं होता है तो उनमें क्रियाशीलताका अभाव हो जाता है अतः किन क्रियाओंसे विद्युत्की घनमें उत्पत्ति होगी उसका ज्ञान होना चाहिये तथा उन्हें वारिद एवं मेघ स्थितिमें लाना चाहिये। अतः वेदने–नमो मेघ्याय च– कहकर उस मेघविज्ञानके जाननेवालोंका सत्कार करनेको कहा है।

(६) वर्षानिमित्त विद्युत् विज्ञान

विविध प्रकारके बादलोंको वर्षणशील बनानेमें जो सहयोगी कार्य हैं उनके ज्ञानके लिये–' नमो विद्युत्याय च ' शब्द वेदने कहा है। वर्षा जो मेघोंसे होती है उसके लिए विद्युत्का प्रभाव अपेक्षित रहता है। जलके निर्माणमें मित्र और वरुण तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है। इन दोनों तत्त्वोंका सम्मिश्रण स्वयमेव नहीं होता है अपितु विद्युत्के द्वारा ही दोनों तत्त्वोंका सम्मिलन होता है, जैसा कि—

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती
राजस्वश्चितानाः।
याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिंचन्
याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः॥
(यजुः अ. १० मं. १)

इस मन्त्रमें बताया गया है। अर्थात्– हे मनुष्यो ! तुम-लोग–देवाः याभिः मित्रावरुणौ अभ्यषिंचन्– चतुर विद्वान् वैज्ञानिक लोग जिन विद्युत् शक्ति युक्त क्रियाओंसे मित्र और वरुण तत्त्वोंको परस्पर एक दूसरेसे संयुक्त करके जलरूपमें सिंचित करते हैं। और जिन क्रियाओंसे–" इन्द्रं अरातीः अनयनः " विद्युत्को मित्र और वरुणमें संयुक्त कर, परस्पर न मिलनेके विरोधीभावको जीतते हैं या उन विरोधी भावोंपर विजय प्राप्त करसे हैं, उन क्रियाओंसे—

मधुमतीः ऊर्जस्वतीः चितानाः राजस्वः
अपः अगृभ्णन्।

प्रशंसनीय, मधुरादि गुण युक्त, बलपराक्रम बढानेवाले, चेतना देनेवाले आकारमय, प्रकाशयुक्त जलोंको प्राप्त करो।

इसप्रकार इस मन्त्रमें बताया गया है कि जलोंके निर्माता तत्त्वोंके परस्पर संयुक्त करनेके किये विद्युत्के प्रयोगकी आवश्यकता होती है और उससे उन दोनों तत्त्वोंके परस्पर मिलनेमें जो विरोधी स्थितियां होती हैं या तत्त्व होते हैं उनका विनाश होजाता है या दूरीकरण होजाता है। इस अन्तरिक्षमें विद्युत्के सहयोगसे मित्र और वरुण तत्त्वों द्वारा जिन जलोंका निर्माण होता है वे दीप्तिमान्, चैतन्यता अर्थात् जीवनशक्ति प्रदान करनेवाले और मधुरतादि गुणोंसे युक्त होते हैं। ऐसे जलोंको वेदने–मधुमती आपः– कहा है।

आजके वैज्ञानिक जिन क्रियाओंसे वर्षा करानेका प्रयोग कर रहे हैं उनमें एक प्रकार बादलोंपर नमक छिडक कर वर्षा करानेका भी है। वैदिक विज्ञान एवं प्राकृतिक विज्ञानके द्वारा ' मधुमती आपः ' मधुर जलोंका सम्पादन होता है और अर्वाचीन विज्ञान उन मधुर दिव्य, जलोंको क्षारयुक्त–लवणयुक्त जल बनाता है। उन मधुरजलोंके सामर्थ्यको वेदने– ' चितानाः ' शब्दके द्वारा, चेतना देनेवाले, जीवनीय शक्ति देनेवाले,– ऊर्जस्वतीः बल पराक्रम बढानेवाले, प्राण शक्तिदायक बताया है। परन्तु इसके विपरीत वर्तमान वैज्ञानिक यदि लवणयुक्त जलकी वर्षा सम्पादन करेंगे तो वे जल कदापि– मधुमती, ऊर्जस्वती, चितानाः– इन गुणोंसे युक्त नहीं हो सकेंगे और वे प्राणशक्ति सम्पन्न न होकर अपान शक्तिदायक ही हो सकेंगे ? (क्रमशः)

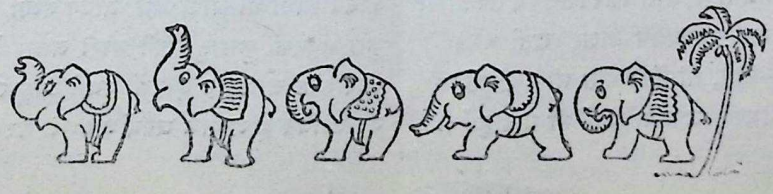

वि र ह

कवि— श्री देवकीनन्दन सिंह

[रूपकालंकारके द्वारा आध्यात्मिकताको सललित और सौम्य शब्दोंमें व्यक्त करनेकी पद्धति कवियोंकी एक अनोखी पद्धति है। इस रहस्यवादका बीज कबीरके पद्योंमें बोया गया, जो आगे चलकर अन्यान्य कवियोंके भावप्रस्रवण द्वारा सिंचित होकर लहलहा उठा। कविका कोमल हृदय कमनीय भावनाओंको प्रेरित करके आध्यात्मिकताको भी शृंगारका जामा पहना देता है। परमात्माको प्रियतम और आत्माको प्रियतमाके रूपमें मानकर उनका शृंगारिक वर्णन पाठकोंके लिए अपरिचित नहीं है।]

(१)

चन्द्रमलिन था नीरव रजनी, जगती सारी सोती थी,
भवसागर पार उतरनेको, किसकी तैय्यारी होती थी।
जब चल देना ही निश्चय था, रुकनेकी आश दुराशा थी,
चलनेकी अन्तिमबेला तक, किससे मिलनेकी आशा थी

(२)

अपलक आंखें किस आशामें क्षिति और गगन थी देख रहीं,
अपने किस प्रियतम संगीके, आनेका पथ भी देख रहीं।
आंचलमें रजनीके क्यों आंसूके मोती भरती थीं,
पिय आगम हित ज्योतिर्मय, पथ रखनेकी विनती करती थीं॥

(३)

नाविक बोला आओ पथिको, पुरवय्या चलनेवाली है,
मिलनेवालोंसे मिल जुल लो अब नइया खुलनेवाली है।
रजनी न रुकी, नाविक विलम्ब क्षण करनेको तैय्यार न था,
प्रियसे मिलनेकी आशामें, क्षण रुकनेका अधिकार न था॥

(४)

पग चल चल कर रुक जाते थे, आंखें फिर फिर पथ तकती थीं,
नौकारोहणकी बेला तक, प्रियदर्शन आशा रखती थी।
सागर तट तक जाते-जाते, सांसोंकी गति भी मन्द हुई,
छूटी आशा प्रिय आगमकी, अपलक आंखें भी बन्द हुईं॥

(५)

उस समय हवा जब धीरेसे तन तापितसे छू जाती थी,
प्रियकरसे छुये जानेके भ्रममें आंखें खुल जाती थीं।
कर कोमल झट उठ जाते थे, प्रिय अभिनन्दनकी आशामें,
आंखें मुंदती कर गिर जाते, आगमकी घोर निराशामें॥

(६)

हिल-हिल जाते थे अरुण अधर, कुछ व्यथा नहीं कह पाते थे,
रसना विकला हो मौन हुई हाँ प्राण विकल रह जाते थे।
आयेंगे प्राणाधार नहीं, होती ये भूल प्रतीत न थी,
फिर अन्य किसीसे कहनेकी उस प्रेममयीकी रीति न थी॥

(७)

प्रियतमसे पीडा कहनेको, अबतक कोई आधार न था,
कुछ कहे बिना चल देना भी प्राणोंको स्वीकार न था।
कण्ठोंकी हिचकी में स्वर था, दासीको नाथ क्षमा करना,
अन्तिम बेला तक दर्शनकी, प्यासीको नाथ क्षमा करना॥

(८)

जीवन साथी भी आया जब, जीवन नैय्या मंझधार गयी,
कुछ कहनेकी कुछ सुननेकी सारी आशा बेकार गयी।
फिर लौट चला वह एकाकी दृगमें आंसू उर आह लिए,
वह जीवित है अबतक जगमें बस एक मरणकी चाह लिए॥

" तैलरंगोंसे चित्र रंगनेकी उनकी पद्धति दो प्रकारकी दिखाई देती है। कुछ चित्र जानबूझकर सावधानीसे चित्रित किए हुए दिखाई देते हैं, तो कुछ चित्र ऐसे दिखाई देते हैं कि मानों इनमें पण्डितजीने कूंचियोंको फेर सा दिया हो। दोनों पद्धतियोंमें वातावरणको स्पष्ट करनेकी अप्रतिम कुशलता पण्डितजीमें रही है। इसकी साक्षी औंधम्युजियममें सुरक्षित एवरेस्ट (गौरीशंकर) शिखरके दो भव्य, अनुपम पर अपूर्ण चित्र दे रहे हैं। बडी कूंचीसे अंकित किए चित्रोंमें सफेद, नीले और हरे रंगोंकी क्रीडा देखनेवालेको भौचक्का कर देती है। दूसरे एक चित्रमें उन्होंने अमृतसरके सुवर्ण-मन्दिरको चित्रित किया है। उसमें मन्दिरके सोनेके पत्रपर सूर्यकिरणोंके पडनेके कारण उसकी दिव्य शोभा, नीचे नीले और पारदर्शक पानीमें उस मन्दिरका प्रतिविम्ब, रंगोंका मिश्रण और वातावरणकी पवित्रता सभी कुछ अपूर्व है। "

१९१८ में औंध आनेके बाद पण्डितजीने चित्रकलाका त्याग कर दिया। फिर भी शहाणे लिखते हैं—

" चित्रकलासे संन्यास ग्रहण करनेके बीस वर्ष बाद भी अपने पुत्रको चित्रकारीकी शिक्षा देते हुए उनका काम देखनेका संयोग अनेक औंधवासियोंको मिला। इतने प्रदीर्घ-कालके बाद भी पण्डितजी उसी आत्मविश्वास और सफाईसे तूलिकाका प्रयोग करते रहे। करीब १८" × २४" के आकारका चित्र एक ही बैठकमें पूर्ण कर देते थे। औंधके विशालबागमें उनके द्वारा चित्रित निसर्ग चित्र अनेक दृष्टियोंसे संस्मरणीय है। पण्डितजीके अनेक उत्कृष्ट चित्रोंको श्री शं. वा. किर्लोस्करने अपने कारखानेके कैलेण्डर पर छापे थे। औंधके महाराजके साथ उन्हींके बंगलेमें महाबलेश्वरमें पण्डितजी वहांके प्राकृतिक दृश्योंको चितारनेके लिए चार पांच दिन रहे थे। १८" × २४" के आकारके तीन रंगोंमें तैलचित्र वे एक दिनमें पूरा कर देते थे। उनमेंसे बागके फूलोंका एक रमणीय चित्र १९६५ सालमें बम्बई आर्ट सोसायटीके स्वर्णमहोत्सवके अवसर पर सम्पन्न प्रदर्शिनीमें लगाया गया था।

अपना एक संस्मरण सुनाते हुए श्री शहाणे लिखते हैं—

एकबार फोटोपरसे हाथीके दांतपर व्यक्ति चित्र बनाने वाला एक कलाकार दिल्लीसे औंधमहाराजके पास आया। सधारणतया ३" × २" आकारके सपाट हाथीदांत पर वह रंगोंमें एक व्यक्ति चित्रको २-३ दिनोंमें हूबहू तैय्यार कर देता था। लोगोंको आश्चर्य होता था कि वह इतना अल्पावधिमें ही चित्रोंको कैसे बना देता है। उस समय रा. ब. धुरन्धर भी वहीं थे। कई लोगोंको यह सन्देह था कि फोटोग्राफीका उपयोग करके वह चित्र बनाता होगा। एकदिन पण्डितजी, धुरंधर और औंधके चित्रकार धुरंधर राजासाहबके पास बैठे हुए थे, उसी समय हाथीदांतके चित्रकी परीक्षा करनेका निश्चय हुआ। उनमेंसे एक चित्रको खरोंचकर देखा, पर उसके नीचे फोटोप्रिंट आदि कुछ भी नहीं था। पर वह चित्र खराब हो गया। इसलिए राजा-साहब थोडा नाराज हो गए। पर किया भी क्या जासकता था। वह दिल्लीवाला चित्रकार तो कभीका चला गया था। फिर दुरुस्त कौन करता ? अन्तमें पण्डितजीने वह काम हाथमें लिया और बहुत छोटी कूंची लेकर उसे पहलेके समानही सुन्दर बना दिया। मिनियेचर चित्रमें सूक्ष्मताको जो जानते हैं, उन्हें पता चल सकेगा कि ६० वर्षके बाद उसप्रकार सूक्ष्म चित्र रंगना कितना कठिन काम है।

" पण्डितजी कलाके बाबतमें जरा भी रूढीवादी नहीं हैं। बम्बईमें सम्पन्न योरोपियन चित्रकारोंकी प्रदर्शनीसे औंधके म्युजियमके लिए चित्र खरीद कर ले आनेके लिए औंधके राजाने पण्डितजीको भेजा। उन्होंने एक सूर्यास्त और दूसरा जलाशयके दृश्योंवाले दो चित्र खरीदे···वे आज भी औंधके म्युजियममें हैं। उन चित्रोंकी उत्कृष्टताके बारे में किसीके भी दो मत नहीं हो सकते। अध्ययन करते समय पण्डितजीसे प्रि. ग्रिफिथने अजन्ताके चित्रोंकी प्रतिकृतियां तैय्यार करवाईं और भारतीय चित्रकलाका महत्त्व संसारमें फैलाया। उसका पण्डितजीकी चित्रकला पर परिणाम हुआ, इससे पण्डितजीके हृदयमें भारतीय चित्रकलाके प्रति अभिमान हुआ। "

व्यक्तिचित्र अंकित करनेमें पण्डितजीकी निपुणताके बारेमें औंधमहाराज अपनी आत्मकथामें लिखते हैं—

" उन्होंने अनेकोंको अपने सामने बैठाकर उनके पोर्ट्रेट बनाये। परशुराम सखाराम, दफ्तरदार दत्तात्रेय मेहेंदळे, नारायण गोसावी, संत भटजी जोशी, दत्तोपंत चितारी और सोनबा सातवलेकरका भी पोर्ट्रेट्स। इस पोर्ट्रेटपेंटिंगका आगेके अध्ययनमें अच्छा उपयोग हुआ। "

पण्डितजीका कहना है– " किसी भी चित्रमें बीचका अन्तर रंगोंसे दिखलानेका अभ्यास करना चाहिए। " पण्डितजीका मत है कि अभिजात चित्रकारमें यदि सौन्दर्य

दृष्टि हो, तो उसके लिए एक छोटासा दृश्य भी पर्याप्त हो जाता है। किसी पुराने पेड, घर या जगह भी चित्रकार अपनी तूलिका और रंगोंसे सौन्दर्यकी सृष्टि कर सकता है। इसीमें चित्रकारका नैपुण्य है। माइकिल एंजेलो और राफाइल इन दो इटालियन चित्रकारों पर पण्डितजीकी बडी निष्ठा है। अजन्ता और एलोराके चित्रोंकी आकृतियोंके छोटे और बडेपनको उन्होंने " स्पिरिचुअल पर्स्पेक्टिव " संज्ञा दी है।

दर्शकके मनको आनन्दित करनेवाले चित्र पण्डितजीके पिता बनाया करते थे। दीवारपर अपने पिताके द्वारा बनाये गए चित्रोंको देखकर छै वर्षका श्रीपाद भी चित्र बनाने लगा। वही विद्या विकसित होकर बम्बईके स्कूलमें अध्ययन करते समय लाभदायक सिद्ध हुई। पॅरिस जाकर चित्रकला सीखनेकी पण्डितजीकी बडी इच्छा थी, पर अर्थाभावके कारण उनकी यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी।

कला आत्माकी लीला है। पण्डितजीका कथन है– " कलाप्रेमी चित्रकारोंका समय महाराष्ट्रमें अभी आना बाकी है।...यदि प्रयत्न करना हो तो इसी प्रकारका प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे चित्रमें उच्च ध्येय प्रतिबिम्बित हो। "

" राष्ट्रीय कलाकी पवित्रताको सुरक्षित रखनेके लिए जिसप्रकार भारतीय चित्रकलामें चित्रकारोंने अपने व्यक्तित्वकी भी आहुति दे डाली, वैसा उदाहरण और कहीं नहीं दिखाई देता। भारतीय चित्रकलामें, राजपूत, मुगल, कांगडा आदि शाखायें हैं पर इन शाखाओंमें भेद आंखोंकी बनावट, रेखाओंका अंकन आदि पर ही अवलम्बित है। "

"घरमें ही शिष्योंको चित्रकला सिखाई जा सकती है। फोटोग्राफी भी घरमें ही सिखाई जा सकती है। इन दोनों कलाओंकी शिक्षा मैंने घरपर ही अनेक शिष्योंको दी है और वे इन कलाओंपर अपनी आजीविका उत्तम रीतिसे चला रहे हैं। यह देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है। पंजाबमें लाला हंसराज सवरवालने फोटोग्राफीकी मेरी दूकान खरीद ली और उसे उत्तम रीतिसे चलाकर उन्होंने हजारों रु. कमाये। वे अब एक प्रतिष्ठित नागरिकके रूपमें पेन्शनमें सुखसे रहते हैं। श्री नारायणराव वीरकर नामके एक दूसरे शिष्य बम्बईमें अपना व्यवसाय उत्तम रीतिसे चला रहे हैं। तीसरे शिष्य म. रूपकृष्ण भारतीय चित्रकलामें प्राविण्यता प्राप्त करके विलायत चले गए, वहां एक फ्रेंच स्त्रीसे विवाह करके अपनी कलाके द्वारा उन्होंने बहुत यश कमाया। इसप्रकार पंजाबमें अनेक शिष्य थे। विभाजन हो जानेके कारण उनका पता लगाना आज कठिन हो गया है। "

" अजमेरके अनाथालयसे आनन्द और गोवर्धन नामके १५-१६ बरसके दो अनाथ बच्चोंको लाकर उन्हें फोटोग्राफीकी शिक्षा दी। वे दोनों पंजाबमें अपना व्यवसाय उत्तम रीतिसे चलाते थे। पर आज उनका पता नहीं है। आनन्द पेशावरका अनाथ था, वह रावलपिण्डीमें व्यवसाय करता था और आगे जाकर वहांकी म्युनिसिपलिटीका सदस्य भी हो गया था। गोवर्धनने फोटोग्राफीके साथ साथ पौरोहित्य भी सीख लिया था। इसकारण आर्यसमाजमें उसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। इसप्रकार पंजाबमें मेरे २० शिष्य थे। उनमें एक डॉक्टर बनकर दिल्लीमें डॉक्टरीका धंधा करने लगा, और वह डॉ. नीलाम्बर जोशीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। मेरे सब शिष्योंमें वाटर कलरसे चित्र तैय्यार करनेमें इन्होंने बहुत प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। विभाजनके झगडेमें एक मुसलमान डॉक्टरने उनके उत्कर्षको न सह सकनेके कारण उन्हींके दवाखानेमें रोगियोंकी सेवा करते समय गोलीसे मार डाला। यह सुनकर मुझे इतना दुःख हुआ कि मानों मेरा भाई ही चल बसा हो। "

" श्री शंकरराव किर्लोस्कर मेरे महाराष्ट्रीय शिष्योंमें अत्यन्त बुद्धिमान्, चित्रकला और फोटोग्राफीमें बहुत कुशल और नये प्रयोगोंमें बहुत प्रवीण हैं। लाहौरमें वे मेरे पास करीब दो वर्ष रहे। उनकी बुद्धि कुशाग्र और सर्वतोगामी थी। उनकी रेखाओंमें कला स्वयंसिद्ध थी। किर्लोस्करवाडीके किर्लोस्कर कारखानेके मैनेजरके रूपमें उन्होंने उपद्रव (१९४८) के समयमें भी अपनी कुशलतासे कारखानेको सुरक्षित और सुव्यवस्थित रखा।

" शिष्योंमें कुछ शिष्य धूर्त भी निकले। शर्मा नामक एक पंजाबी शिष्य था। वह हमारे घर दो बरस रहा। वाटर कलर, ऑइल कलर और शेडिंगका काम उसने सीखा। कलामें कुशल हो गया, पर वह सारे लाहौरमें यह प्रचार करने लगा कि मैं पं. सातवलेकरके व्यवसायमें पार्टनर हूँ। मैं ऑर्डर लाता हूँ, काम करता हूँ, इसीलिए पण्डितजीकी

दूकान चलती है।" अन्तमें हमने उसे घरसे निकाल बाहर करनेका प्रयत्न किया, पर वह टससे मस न हुआ। मारपीट तक की नौबत आ गई। वह अपने भाई और मित्र ले आया। लाहौरमें मेरे परिचित कम और उसके ज्यादा। उसका उसे फायदा मिला। आखिरकार पंचोंने दूकानकी कीमत ठहरा कर उसके आधे हिस्सेके रूपमें दसहजार रु. दिलवाकर यह झगडा मिटाया।"

"वस्तुतः उसने किया कुछ भी नहीं था। पर उसने मेरे घरमें रहते हुए मेरे अनजाने ऐसी परिस्थितिका निर्माण कर दिया था कि आखिरकार इतनी रकम देकर ही उससे पिण्ड छूटा।"

"मेरे अबतकके जीवनमें मुझे ऐसे धूर्त शिष्य ४–५ ही मिले। पर इन सबके कारण भी मुझे १८००० रु. की हानि उठानी पडी। पर इसके लिए मैं उन्हें कसूरवार नहीं ठहराता। इसमें वास्तविक दोष तो मेरी व्यवहार शून्यताका ही है। मैंने निश्चित कर लिया था कि चाहे कुछ भी हो मैं अंग्रेज सरकारकी अदालतमें कदम नहीं रखूंगा। इसी कारण मुझे यह नुकसान सहना पडा। पर मुझे इसका कभी दुःख नहीं हुआ। प्राप्त हुए धनको मैंने सदा अपने ध्येयके लिए ही खर्च किया, इसलिए मुझे इस विषयमें कभी भी बुरा नहीं लगा।"

"युवावस्थासे ही मैंने यह निश्चय कर लिया था कि मैं अदालतमें जाकर अंग्रेजोंसे न्यायकी याचना कभी नहीं करूंगा। अंग्रेजोंकी नौकरी भी कभी नहीं करूंगा और अंग्रेजी पोशाक भी नहीं पहनुंगा। आगे जाकर मैं अपने चित्रोंके लिए फ्रेंच रंग पैरिससे मंगवाने लगा। पर यथा-संभव मैं अंग्रेजीमालका उपयोग नहीं करता था।"

"लाहौर आर्यसमाजमें किन्हीं कारणोंसे मारपीट हो गई। आर्यसमाजके सभी सदस्य निर्णयके लिए कलेक्टरके पास गए। सिर्फ मैं ही नहीं गया। मैंने सब सदस्योंसे कहा कि आर्यसमाजके सदस्योंका कोर्टमें जाना ठीक नहीं। आपसमें ही पंचोंके द्वारा निर्णय करा लेना चाहिए। अंग्रेजोंकी अदालतोंमें आर्योंका निर्णय होना शोभा नहीं देता।"

"मेरे शिष्योंमें श्री रामकृष्ण वामन देऊस्कर एक उत्तम और समप्राण मित्र थे, ये भी हैदराबादमें एक चित्रकार थे। वे उत्तम और निष्कपट स्नेही थे, और एक उत्तम चित्रकार भी थे। उन्होंने इटलीमें जाकर चित्रकलामें कुशलता प्राप्त की। वहां उन्होंने एक बंगाली लडकीसे विवाह किया और वहांसे आकर वे हैदराबादमें स्थायी हो गए।"

पण्डितजी अपने चित्रकलाके व्यवसायको छोडकर वेदोंकी तरफ क्यों मुड गए, इस प्रश्नका उत्तर देते हुए उन्होंने आर्ट-जर्नलके लिए इण्टरव्यू देते हुए कहा था—

"मैंने चित्रकलाको क्यों छोड दिया, इसकी भी कहानी अलग है। जब मैं चित्रकारी करता था, तब भी मैं फुरसतके समय वैदिक वाङ्मयका अध्ययन करता था। लाहौरमें रहते हुए मैं स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्दके सम्पर्कमें आया। मेरे भविष्यकी वह पृष्ठभूमि थी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि चित्रकलासे मेरी कर्तृत्वशक्ति बिल्कुल कुंठित हो जाएगी। चित्रकलाके द्वारा, जो मेरे चित्रोंकी कीमत दे सकते थे, ऐसे मुट्ठीभर लोगोंकी ही सेवा मैं कर सकता था। पर वैदिक वाङ्मय एक महासागर है। उसके लिए मैं जितना कुछ भी करूं, अल्प ही होगा। इसलिए मैं आज जो बन पाया हूँ, वह वैदिक महासागरमें डुबकी लगाकर ही बन सका हूँ। मैंने अपना जीवन वैदिक वाङ्मयको सर्वसाधारण तक पहुंचानेके कार्यके लिए समर्पित कर दिया।"

"अब मेरी अपेक्षा केवल यही है कि मुझे वेद पढनेवाले शिष्य मिलें। पर वैसा अध्ययनशील शिष्य मुझे आजतक नहीं मिला। जो भी आये वे मेहनतसे तंग आकर चले गए। परिश्रमके बिना ही वेद पढनेके लिए उपयोगी पुस्तकें अभी तैय्यार नहीं हुई हैं। इस कारण कुछ वर्षोंतक तो वेदाध्ययन कष्टदायक ही होगा। पर परिश्रमी विद्यार्थी वेदोंका अध्ययन करनेके लिए प्राप्त हों यही मेरी एक महती अभिलाषा है।

× × ×

२३ स्वाध्यायमण्डलका कार्य

लाहौरमें रहते हुए पण्डितजीने वहां एक अध्ययनमण्डल (Study Circle) स्थापित किया था, उससे अनेकोंने फायदा उठाया। औंधमें आनेके बाद वैदिक वाङ्मय और वैदिक जीवनका अनुसंधान करनेके लिए उन्होंने १९१८ में

स्वाध्याय मण्डलकी स्थापना की और १९४८ में उसे पारडीमें स्थलान्तरित भी किया।

१९१८ में सर्वप्रथम पण्डितजीने स्वाध्यायमण्डलके मार्फत प्रथम दस वर्षोंमें वेदग्रंथ प्रकाशित किए। चारों वेदोंकी उत्कृष्ट संहिता छापकर उसे कमसे कम मूल्यमें जनताके लिए उपलब्ध बनाया।

पण्डितजीके स्वाध्यायमण्डलके वेदप्रकाशनके क्षेत्रमें किए गये कार्यकी उपमा ही नहीं है। वेदोंके सर्वशुद्ध मुद्रणके लिए पण्डितजी भारतभर घूमे और वेदमूर्ति श्री सखाराम येडूरकरकी सहायतासे चारों वेदोंकी संहितायें प्रकाशित कीं और ये संहितायें पांच पांच रु. में जनताको दीं। पण्डितजीने आजतक हिन्दीमें, मराठीमें और गुजरातीमें लेखनकार्य किया है। इस कारण स्वाध्यायमण्डलकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

वेदोंके दर्शन, सम्पादन, प्रकाशन, मुद्रण और वितरणके कारण पण्डितजीको वेदमूलक भाग्यसम्पत्तिकी प्राप्ति हुई। उनकी भी वेदमूर्तियोंमें गणना होने लगी। वेदोंकी मूलसंहिता छापनेके बाद पण्डितजीने आर्षेयसंहिता, दैवतसंहिता, वेदोंके सुबोध भाष्य आदि ग्रंथोंका सम्पादन एवं प्रकाशन किया। पण्डितजीके स्वाध्यायमण्डलका कार्य अद्भुत है। पण्डितजीने अनुसंधानकर्ताओंके लिए सहाय्यक ग्रंथ भी छापे। गोज्ञानकोष (२ भाग) और दैवतसंहिता (३ भाग) का विशेषतः उल्लेख किया जा सकता है। गोज्ञानकोषमें गौके विषयमें वेदमंत्रोंका संकलन है। इसके अलावा इस ग्रंथसे अन्य पशुओंका महत्त्व भी जाना जा सकता है। दैवतसंहितामें देवोंके क्रमसे मंत्रोंका संकलन है।

वेदों पर सरल और सहजगम्य शब्दोंमें भाष्य लिखकर वेदोंको जनतातक पहुंचानेका प्रयत्न पण्डितजीने किया। वेदोंमें निहित राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय भावोंको व्यक्त किया। वैदिकधर्म (हिन्दी), पुरुषार्थ (मराठी), वेदसंदेश (गुजराती) और अमृतलता (संस्कृत) पत्रिकाओंके सम्पादनके द्वारा वेदप्रचारका कार्य किया। संस्कृत प्रचारके लिए उन्होंने २४ भागोंकी एक पुस्तकमाला निकाली। संस्कृतकी परीक्षायें भी इस संस्था द्वारा संचालित होती हैं। सम्प्रति इन परीक्षाओंके १३०० केन्द्र हैं, जिनमें प्रतिवर्ष ४२०००–४५००० विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। भारतमें सर्वत्र फैले हुए इन केन्द्रोंकी प्रशंसा महात्माजीने भी की थी।

इतनी बडी संस्थाके संचालनकी चिन्ता पण्डितजी पर हमेशा सवार रहती है। पर "तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहं" इस भगवान्‌की उक्ति पर पण्डितजीका बहुत विश्वास है। औंध महाराजने सर्वप्रथम स्वाध्यायमण्डलके लिए भूमि और वेदप्रकाशनके लिए ६००० रु. दिए और वेदग्रंथके प्रथम प्रकाशनके बाद निराशाके गर्तमें गिर जानेपर एक दिन आकस्मिक रूपसे वेदमुद्रणार्थ दो हजार रु. का एक चेक डाकसे मिला। यह चेक परमेश्वरके प्रसादके समान प्रतीत हुआ। १९४८ में पारडीमें जगह भी ऐसी मिली कि जहां पहले हिन्दुधर्मके नाश करनेका कार्य होता था, वहीं वैदिकधर्म या हिन्दुधर्मकी जागृतिका केन्द्र स्थापित हुआ और वहां वेदध्वनि गूंजने लगी।

"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः" अर्थात् जबतक मनुष्य भरपूर परिश्रम करके थक नहीं जाता, तबतक देव भी उसकी सहायता नहीं करते। पण्डितजीने इस संस्थाकी मार्फत अबतक २५ हजार हिन्दीमें, २० हजार मराठीमें, दस हजार गुजरातीमें और दो हजार अंग्रेजीमें पृष्ठ लिखकर ४०९ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। वेदसंहिताओंका प्रकाशन और अनुवाद पर ज्यादा जोर दिया जाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती और प्रो. मैक्समूलरके बाद वेदोद्धारकके रूपमें पण्डितजीका स्थान ही आता है।

पण्डितजीकी ग्रंथसम्पदा

पण्डितजीने आजतक अनेक ग्रंथोंकी रचना की है, उनके ग्रंथोंका वर्गीकरण वैदिक, आरोग्यविषयक, गीताविषयक, औपनिषदिकके रूपमें किया जा सकता है। वैदिकमें वैदिकधर्म, तत्त्वज्ञान और संस्कृतिके अन्तर्गत सभी विषय आ सकते हैं। आरोग्य विषयके अन्तर्गत व्यायाम, योगासन, नमस्कार, ब्रह्मचर्य और योगशास्त्र आ सकते हैं। गीता विषयमें उपनिषदोंका मंथन करके भगवान्‌के द्वारा निकाला गया गीतामृतका स्वरूप कितना पुरुषार्थबोधक है और गीतामें राष्ट्रीयताका स्वरूप कितना जीवित और जागृत है यह बतानेवाले लेख अन्तर्भूत हो सकते हैं। औपनिषद् विषयमें उपनिषदोंका रहस्य विशद किया गया है।

पण्डितजीने अनेक विषयोंपर लेख लिखकर अपनी स्वतंत्र विचार सरणी व्यक्त की है। उनके मतमें हमारे महोत्सव भी राष्ट्रीय विचारोंके प्रवर्तक हैं। वे लिखते हैं—

" हमारे प्रायः सभी त्यौहार राजकीय बोध देनेवाले हैं। रामनवमीका महोत्सव हमें यही बताता है कि एक आर्य राजकुमारने किसप्रकार निर्वासित होनेपर भी अपने देशके स्वातंत्र्यको सुरक्षित रखा और लोगोंको पारतंत्र्यके कीचडमें साननेवाले एक परद्वीपस्थ राजाके साम्राज्यका नाश किस-प्रकार किया। " गणेशोत्सव " गणेशके द्वारा स्वजातिकी संघटना, स्वदेशबन्धुओंके सांघिक बलकी वृद्धि करना, देव-राष्ट्रको बार बार संकटमें डालनेवाले विदेशी शत्रुओंको नष्ट करके अपने राष्ट्रका कल्याण करना आदि बोधोंको प्रदान करनेवाला है। " कृष्णाष्टमी " हमें यह बताती है कि जिसप्रकार हृतराष्ट्रोंने धृतराष्ट्रोंसे अपना हरा स्वराज्य प्राप्त किया। कंस जैसे जुल्मी स्वार्थी राजाओंका कृष्णने वध किया और गोकुलवासियोंको उसके अत्याचारोंसे बचाया। इसप्रकार ये उत्सव हमें राष्ट्रीय बोध किस प्रकार देते हैं, यह स्पष्ट हो सकता है। " (जीवनप्रकाश–विजयोत्सव)

पण्डितजीके द्वारा लिखे गए ग्रंथ सरल, सुबोध और स्पष्ट हैं। उनके प्रत्येक वाक्यमें भावभरे हुए हैं। वे अपने प्रतिपाद्य विषयको समझाकर लिखनेकी कलामें दक्ष हैं। इसकारण उनके लेखोंमें अनेक स्थल पर पुनरुक्ति देखी जाती है।

पण्डितजीने चारों वेदोंकी संहिता शुद्ध छापी हैं। वेदोंके अर्थके लिए सहायकके रूपमें प्रत्येक देवताके मंत्र अलग अलग छांटकर उनकी संहितायें बनाई हैं। उनके वेदभाष्यके रूपमें वैदिक व्याख्यानोंके चार संग्रह भी छपे हैं। अथर्ववेद और सामवेदका स्पष्टीकरण सहित अर्थ भी छापा है। पण्डितजीका वाङ्मय हिन्दी, मराठी, गुजराती, कन्नड और थोडा बहुत अंग्रेजी भाषाओंके माध्यमसे भी छप चुका है।

उपनिषदोंमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर इन नौ उपनिषदों पर टीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं। रामायण और महाभारत भी सार्थ प्रकाशित हो चुके हैं। गीताका ५० वर्षतक अध्ययन करनेके बाद " पुरुषार्थबोधिनी " टीका लिखी है। संस्कृतका प्रचार करनेके लिए संस्कृत सीखनेवालोंके लिए " संस्कृत पाठमाला " के नामसे २४ भागोंकी एकमाला लिखी और प्रकाशित की है। इसके अलावा योगाभ्यास, योगासन, सूर्यनमस्कार आदि विषयोंपर भी सचित्र पुस्तकें लिखकर छापीं। उनके कतिपय उल्लेखनीयग्रंथ इस प्रकार हैं—

(१) अथर्ववेदका सुबोध अनुवाद– दीर्घजीवन, आरोग्य और शतायु प्राप्तिके उपायोंपर इस ग्रंथमें प्रकाश डाला गया है। बुद्धिका संवर्धन, मनःशक्तिकी वृद्धि, पंचमुखी महादेव, पंचप्राण, यमदूत, ब्रह्मलोकप्राप्ति, अयोध्याका राम, मनुष्य शरीरमें तेंतीस देव, अमृतशक्ति, दुष्टपरिहार, नृत्य हास्य, दुर्गतिनिवारण रोगनिवारण आदि अनेकों विषयोंका ऊहापोह इस ग्रंथमें पण्डितजीने किया है। इस ग्रंथके पांच भाग हैं।

(२) सामवेद– वेदोंमें सोम शब्द बडा ही विवाद्य है। सोम वस्तुतः है क्या ? इस समस्याका समाधान अनेकोंने अनेकों तरहसे किया है। पण्डितजीने भी इस शब्द पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। सामवेदमें सोम शब्दकी बडी विस्तृत विवेचना की गई है।

(३) पुरुषार्थ बोधिनी– गीता वाङ्मयमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाली पण्डितजीकी यह टीका बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण और उत्कृष्ट होनेके साथ ही गीताके वास्तविक स्वरूपको प्रकट करनेवाली है। अनेक टीकाकारोंका यह मत है कि कर्मयोगकी शिक्षा देनेवाली गीता पूर्णतया एक अध्यात्मशास्त्र है, वह उपासकको जगसे विमुख करके मोक्षकी तरफ प्रेरित करती है। पर पण्डितजीने इस मतका खोखला-पन सिद्ध करते हुए यह बताया कि इस संसारमें व्यवहार करते हुए भी संन्यस्त मन पर कर्तव्य दक्षतासे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। पण्डितजीकी यह टीका एक स्वतंत्र टीका है और उसकी शैली अपनी ही है। जो उसे एक बार पढ लेता है, वह उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करता ही है। करीब हजार पृष्ठोंके इस ग्रंथकी पांच आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं।

(४) भगवद्गीता– गीताके श्लोकोंकी सूची अकारा-दिक्रमसे दी है।

(५) मंगलमूर्ति गणेश– " भूतजाति " के वीरोंको गणेशने अग्रस्थान प्राप्त करवाया, इसी कारण गणेशको भी अग्रस्थान प्राप्त हुआ है। गणेश वस्तुतः एक प्रभावशाली संघटक हैं। इस पुस्तकमें पुराणके आधार पर गणेशके विनायक, गुणेश और गणेशके रूपोंमें तीन अवतारोंकी कथा कही है। ये तीनों अवतार तरुणावस्थामें ही विलीन हो गए,

पर इतनी अल्पावस्थामें भी इन क्रान्तिकारक विभूतियोंने जो अद्वितीय पराक्रम किया, वह सबके लिए स्फूर्तिदायक है। इस संजीवक पुस्तकमें यह बोध दिया गया है कि तरुण पीढी अपने राष्ट्रमें संगठन किस प्रकार करे और राष्ट्रमें ऊर्जावस्था किस प्रकार लाई जाए। भूतानमें वीरोंको सम्मानका स्थान गणेशने प्राप्त कराया।

(५) वाल्मीकि रामायण– बाल, अयोध्या, सुन्दर अरण्य, किष्किन्धा, युद्ध और उत्तर काण्डका अनुवाद और समालोचना लिखकर प्रकाशित की।

(७) वेदपरिचय– पण्डितजीने वेदाध्ययनकी परीक्षाओंके लिए पाठविधि तैय्यार की, वेदोंकी संहितायें तैय्यार कीं। सामवेदके अनेक गानोंको भी प्रकाशित किया।

(८) वेदसुधा– वैदिक परिस्थितिका परिचय करानेवाली पुस्तकोंमें वैदिक ऋषियोंका महत्त्व, वैदिककालकी सेना व्यवस्था, वैदिक राज्यशासन, उस शासनके मंत्रियोंकी कर्तव्य दक्षता आदि व्याख्यानोंमें भारतीय संस्कृतिकी मीमांसा है। अथर्ववेदके १२ वें काण्डका प्रथम सूक्त ही "वैदिक राष्ट्रगीत" है। उसमें स्पष्ट लिखा है—

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"। शासक अपने अन्दर मातृभूमिको धारण करनेवाले गुणोंको धारण करके उन्हें बढावें। राष्ट्रभक्तकी यह अभिलाषा है– "जो हमसे द्वेष करता है उसका नाश हमारी मातृभूमि करे।" "वैदिक राष्ट्रगीत" के ४५ वें मंत्रमें कहा है– "अनेक भाषायें बोलनेवाले और अनेक धर्मके माननेवाले भी इस मातृभूमिमें एक घरमें रहनेवालोंके समान परस्पर मेल-मिलापसे रहें। वेदोंके अनुवादके अन्तमें सुभाषित सूची और उपमा सूचियोंका देना पण्डितजीकी अपनी विशेषता है।

इसप्रकार पण्डितजीके जीवनमें शास्त्र और कलाका अद्भुत सम्मिश्रण है। पण्डितजीके लेखोंमें व्यवहार और सिद्धान्त, दर्शन और सदाचारका समन्वय है। पण्डितजीके लेखोंमें प्रवाह है, इसका कारण है कि वे वादविवादसे हमेशा दूर ही रहते हैं। पण्डितजीके ४०९ ग्रंथोंमें महत्त्वपूर्ण पुस्तकें निम्न हैं—

वेद संहितायें

१ ऋग्वेद
२ यजुर्वेद
३ सामवेद
४ अथर्ववेद
५ काण्वसंहिता
६ तैत्तिरीयसंहिता
७ मैत्रायणी संहिता
८ काठकसंहिता
९ दैवतसंहिता (३ भाग)

हिन्दी

१ ऋग्वेदका सुबोध भाष्य
२ यजुर्वेदका अनुवाद (कुछ ही अध्याय)
३ सामवेदका अनुवाद
४ अथर्ववेदका अनुवाद
५ गीता–पुरुषार्थबोधिनी
६ ऋषियोंके दर्शन
७ महाभारत
८ वाल्मीकि रामायण
९ उपनिषद् ग्रंथमाला
१० गोज्ञान कोश (२ भाग)
११ वेदपरिचय (३ भाग)
१२ वैदिक व्याख्यानमाला
१३ योगसाधन ग्रंथमाला
१४ वैदिकस्वराज्यकी महिमा
१५ इन्द्रशक्तिका विकास
१६ वैदिक अग्नि विद्या
१७ विश्वराज्यमें देवताओंका कार्य
१८ वैदिकराष्ट्रगीत

मराठी

१ अथर्ववेदाचा सुबोध अनुवाद
२ सामवेदाचा सुबोध अनुवाद
३ गीता पुरुषार्थ बोधिनी
४ रामायण
५ आरोग्य साधनेचे ग्रंथ
६ मंगलमूर्ति गणेश
७ पौराणिक गोष्टींचा उलगडा
८ वैदिकधर्म
९ आरोग्य खण्ड
१० गीता खण्ड

गुजराती

१ अथर्ववेदनो सुबोध अनुवाद
२ उपनिषद् ग्रंथो
३ बालकोनी धर्मशिक्षा
४ यौगिक व्यायामना पुस्तको
५ पृथ्वीपरनु अमृत – गायनुं दूध
६ अक्षर विज्ञान
७ पुरुषसूक्त
८ वैदिक राष्ट्रगीत

अंग्रेजी

1 Purusharth Bodhini Gita
2 Sanskrit Self Teacher
3 Gandhi Readers

स्वाध्यायमण्डकी भावी योजनायें

संस्थामें आजकल ऋग्वेदका हिन्दी अनुवाद और महाभारतका अनुवाद छप रहा है। संस्थाकी भावी योजनाओंमें वेदसंहिताओंपर ३० भागोंमें अनुवाद छापनेकी एक योजना है। चारों वेदोंमें अथर्ववेद और सामवेद तो सम्पूर्ण अनूदित होकर छप चुके हैं, ऋग्वेदका अनुवाद छप रहा है, यजुर्वेदके कुछ अध्याय छप चुके हैं, बाकी भी शीघ्र ही छपेंगे।

वेदसंहिताओंके अनुवादके बाद ब्राह्मण, आरण्यक और छान्दोग्य, और बृहदारण्यक उपनिषद् आदि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मयको सानुवाद छापनेकी योजना है।

मानवताके अस्तित्वको ऊंचा करनेके लिए वेदाध्ययन करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। इस वेदाध्ययनकी पहिली सीढी संस्कृतभाषाका अध्ययन है। संस्थाकी अनेक योजनाओंमें संस्कृत भाषा प्रचारको वेगवान् बनानेके लिए एक संस्कृत–पाठशाला शुरु करनेकी भी एक योजना है। इस पाठशालामें पढनेवाले विद्यार्थियोंके योगक्षेमके लिए क्षात्रवृत्तियां भी आवश्यक हैं। स्वाध्याय मण्डलकी एक योजना एक विशाल पुस्तकालय निर्माण करनेकी भी है। वेदोंको सुरक्षित रखनेकी दृष्टिसे वेदपाठियोंको तैय्यार करनेके लिए एक महाविद्यालय खोलनेकी भी योजना है। सम्प्रति संस्थाकी तरफसे संचालित होनेवाली संस्कृत एवं वेद परीक्षाओंको और विशाल एवं विस्तृत बनानेकी भी योजना संस्थाके आगे है। इस प्रकार स्वाध्याय मण्डलकी अनेकों योजनायें हैं।

\+ \+ \+

२४ पण्डित सातवलेकरजी की वैदिक विचारधारा

अर्वाचीनयुगके वैदिक विचारकोंको पांच वर्गोंमें बांटा जा सकता है—

(१) उनमेंसे एक वर्ग उन वेदपाठियोंका है, जो वेदोंका पाठ मात्र करते हैं, उन्हें कण्ठस्थ करके रोज उनका पाठ किया करते हैं। पर वेदमंत्रोंके अर्थके विषयमें वे विचार नहीं करते। वेदोंके पाठमात्रको ही वे अपना कर्तव्य समझते हैं।

(२) दूसरा वर्ग उन विद्वानोंका है, जो सायणाचार्य आदि प्राचीन वेदभाष्यकारोंके अर्थको शब्दशः स्वीकार कर लेते हैं। वेदोंके राष्ट्रीय और सामाजिक पक्ष पर वे विचार ही नहीं करते। उनके मनमें यह प्रश्न भी कभी उपस्थित नहीं होता कि यदि वेदोंमें उत्कृष्ट और उदात्त विचार हैं, तो फिर वेदोंके विषयमें श्रद्धा रखनेवाले हिन्दुसमाजका यह अधःपतन क्यों हुआ ? इस वर्गके विद्वानोंमें वेदाध्ययन बहुत बडे पैमाने पर होता है, पर इसके साथ ही प्राचीन रूढिवादके अभिमानसे भी यह वर्ग ग्रस्त रहता है।

(३) इस वर्गके विद्वान् किसी विशिष्ट सम्प्रदायके अनुयायी होते हैं। इनके लिए अपने अपने सम्प्रदायके प्रवर्तकके द्वारा किए गए अर्थ ही सर्वतोपुरि प्रमाण होते हैं। "गुरुवाक्यं प्रमाणं" के अनुयायी इस वर्गके विद्वान् सम्प्रदायके प्रवर्तकके द्वारा किए गए अर्थमें किसी तरहका परिवर्तन करना या देखना सहन नहीं कर सकते। अपने सम्प्रदायके प्रवर्तकमें इनकी श्रद्धा एवं भक्ति इतनी अविचल होती है कि यदि कोई इनके सम्प्रदायाचार्यके वेदार्थमें कुछ सन्देह या त्रुटि दिखलाता है, तो वह महान् विद्वान् होते हुए भी इनकी नजरोंसे गिर जाता है। इस वर्गके उदाहरण हैं आर्यसमाजी विद्वान्। इसमें सन्देह नहीं कि सायणके बाद महर्षि दयानन्दने वेदोंका बहुत प्रचार किया और अपने भाष्यों द्वारा आगे आनेवाले विचारकोंको विचारकी एक नई दिशा प्रदान की, सायणके द्वारा अपने भाष्यमें प्रतिपादित पशुमेध, अश्वमेध, अजामेध आदि निकृष्ट पशुबलिके सिद्धांतों को परिमार्जित कर वेदोंको शुद्ध एवं पवित्र स्वरूप प्रदान किया, पर महर्षिके बाद यदि कोई उन मंत्रोंका दूसरा अर्थ करता है या महर्षिके भाष्यमें विसंगति दर्शानेका प्रयास करता है तो आर्यसमाजी पण्डितोंको गुस्सा आता है।

(४) इसके विपरीत कतिपय आधुनिक विद्वान् ऐसे हैं, जो वेदोंकी शव परीक्षा ही किया करते हैं। जिस प्रकार शवको चीरफाडा जाता है, उसी प्रकार इस चतुर्थ वर्गके आधुनिक विद्वान् वेदकी चीरफाड ही किया करते हैं। इस वर्गके विद्वान् केवल पदवी प्राप्तिके लिए ही वेदाध्ययन किया करते हैं। जिस प्रकार एक चीरफाड करनेवालेके हृदयमें शवके प्रति ममता नहीं रहती और अपने कार्यके बाद कंकालको उठाकर फेंक देता है, उसी प्रकार इन आधुनिक विद्वानोंके हृदयोंमें भी वेदोंके प्रति कोई ममता नहीं होती, वे चीरफाड करनेके बाद वेदोंको उठाकर फेंक देते हैं। १९ वीं शताब्दीके योरोपीय विद्वानोंके सम्पर्कमें आनेके कारण यह चौथा वर्ग अस्तित्वमें आया।

(५) पांचवां वर्ग उन मनीषियोंका है, जो सभी भाष्यकारोंके ग्रंथोंका अध्ययन करते हैं. पर किसी एक भाष्यकारका अनुगमन नहीं करते, अपितु सभी भाष्योंमेंसे उत्कृष्टता लेकर उस पर मनन करते हैं और उस मननसे मथित उत्तम नवनीतको लोगोंके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। ऐसे विद्वानोंके ग्रंथोंमें उनका व्यक्तिगत मनन ज्यादा होता है और अन्य भाष्यग्रंथोंका अनुकरण कम। हम वेदमूर्ति पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरकी गणना इसी वर्गके विद्वानोंमें कर सकते हैं।

पण्डितजीकी धारणा

पण्डितजी स्वतंत्र विचारोंके व्यक्ति हैं। उनकी वेदोंके बारेमें धारणायें भी भिन्न हैं। उन्हें वेदाध्ययन और वेद प्रचारकी प्रेरणा महर्षि दयानन्दसे ही प्राप्त हुई पर वे उनके अन्धानुयायी नहीं बने। पण्डितजी सायणाचार्यके भी ऋणी हैं, पर पण्डितजीके वेदानुवादोंका आधार सायण नहीं हो पाए। लाहौरमें सातवलेकरजी आर्य समाजके वृढ आधार स्तम्भोंमेंसे एक रहे हैं, पर उन्होंने "वावावाक्यं प्रमाणं" में कभी विश्वास नहीं किया। उन्होंने महर्षिके भाष्यमें भी कई विसंगतियां दिखाई और आर्यसमाजी पण्डितोंके रोषका वे लक्ष्य बने।

वेदोंके पौरुषेयत्व और अपौरुषेयत्वके विषयमें पण्डितजीकी मान्यता मध्यस्थीकी है। उनका कहना है कि वेदोंमें ज्ञान परमात्माका है पर उस अव्यक्त ज्ञानको व्यक्तता प्रदान करने वाले शब्दमात्र ऋषियोंके हैं। "काय त्यां पामरें बोलावीं उत्तरें, परीं त्वां विश्वम्भरें बोलाविलें" (मैं अज्ञानी क्या बोल सकता हूं, वह विश्वम्भर परमात्मा ही मुझसे बुलवाता है) सन्त तुकारामकी इस उक्तिकी सत्यता वेदोंके विषयमें भी अक्षुण्ण है। इस प्रकार पण्डितजी न पूर्णतया अपौरुषेयवादी हैं और न पूर्णतया पौरुषेयवादी ही। वेदोंकी तरफ पण्डितजीने सदासे एक अपूर्व दृष्टिसे देखा है। उनकी मान्यताके अनुसार-वेदोंको केवल अध्यात्मशास्त्र मानना वेदोंके मूल्यको कम करना है। उनकी दृष्टिमें वेद पतित, पराभूत और निर्जीव हुए हमारे समाजमें आत्मविश्वास, विजिगीषा, महत्त्वाकांक्षा, सामर्थ्य, पराक्रम भरकर वैभवसम्पन्न सात्त्विक जीवन निर्माण करनेवाले तथा पराभूत मनोवृत्तिके किल्बिषको नष्ट करनेवाले असाधारण ग्रंथ हैं, यदि उनका अध्ययन, मनन और आचरण किया जाए तो इसी मर्त्यलोकमें स्वर्गकी स्थापना हो सकती है।

पण्डितजीने अबतक अनेकों लेख एवं ग्रंथ लिखे हैं, उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१ राष्ट्रीय और राजकीय विचार।
२ वैय्यक्तिक जीवन विषयक विचार।
३ तत्त्वज्ञान विषयक विचार।
४ वेदविषयक सामाजिक विचार।

पण्डितजी यह मानते हैं कि समस्त शास्त्रोंका पर्यवसान मनुष्यकी सर्वांगीण उन्नतिमें ही है। कोई भी ऐसा शास्त्र, जो केवल अध्यात्मज्ञान ही मनुष्यको प्रदान करता हो या उसे अध्यात्मकी तरफ प्रेरित करके उसका ऐहिक जीवन विकृत कर देता हो, मनुष्यके लिए सर्वथा निरर्थक है। मनुष्यके लिए निःश्रेयससे पहले अभ्युदयकी अधिक जरूरत है, जो राष्ट्र अशान्ति, अव्यवस्था, अराजकता और अत्याचारका शिकार हो, उस राष्ट्रमें अध्यात्मके चर्चाकी कल्पना भी असंभव है।

राष्ट्रीय एवं राजकीय विचार

इसीलिए वेदोंने सर्वप्रथम राष्ट्रकी उन्नतिका उपदेश मनुष्योंको दिया। अत्रि, गोतम-कश्यप-वसिष्ठ आदि जितने ऋषि थे, वे सभी राष्ट्रीय ऋषि थे। सभी महत्त्वाकांक्षी, लोगोंकी उन्नति करनेवाले और अच्छे नेता एवं कार्यकर्ता थे। ये सभी ऋषि राजाओंका पौरोहित्य करते थे, पर इन ऋषियोंका पौरोहित्य खाने कमानेके लिए नहीं होता था, अपितु ये उस राष्ट्रको और राजाको उन्नत करनेके लिए ही पौरोहित्य करते थे। ऋग्वेदका एक मंत्र है।

दण्डा इव इत् गो-अजनास आसन्
परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठः
आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ (ऋ. ७।३३।६)

इस मंत्रका अर्थ पण्डितजीने इसप्रकार किया है– "गौओंको चलानेवाले कोमल डण्डेके समान कोमल प्रकृतिके भारतके लोग आपसमें झगडनेवाले थे। वसिष्ठ इनका पुरोहित हुआ और उनकी उन्नति हुई।"

पुरोहितका एक मात्र लक्ष्य अपने राजा एवं राष्ट्रको बलशाली बनाना ही था। अथर्वका ऋषि स्पष्ट कहता है, "मेरा यह ज्ञान तेजस्वी हो, मेरा यह वीर्य और बल तेजस्वी हो। क्षात्रसामर्थ्य अविनाशी हो। जिनका मैं पुरोहित हूँ उनका तेज बढे। हमारे ज्ञानी और धनी मित्रोंपर जो सेना लेकर हमला करते हैं, वे अवनत हों। जिनका मैं पुरोहित हूँ, उनके शस्त्र अग्नि तथा इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण बनाता हूँ। उनके राष्ट्रको शक्तिशाली बनाता हूँ। उनका क्षात्रतेज अविनाशी हो। सब देव उनका संरक्षण करें।" (अथर्ववेद ३।१९।१–५)

उस समय पुरोहित सब तरहके कामोंमें निष्णात होता था। सैनिक शिक्षा, शस्त्रास्त्रोंकी व्यवस्था, किले तथा नगरकी रक्षा, अपने राष्ट्रकी रक्षा आदि सभी तरहके कामोंमें वह कुशल होता था। कोई भी राष्ट्रका ऐसा काम नहीं था कि जो वेदवित् पुरोहितके लिए असाध्य हो। मनु कहते हैं—

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥
(मनु. १२।१००)

"सेनापतिका कार्य, राज्यशासन, दण्डनीतिका कार्य और यहांतक कि सारे लोकोंका शासन एक वेदशास्त्रमें पण्डित पुरोहित कर सकता है।" इसी दृष्टिसे पण्डितजीने अत्रि-वसिष्ठ आदि ऋषियोंका विवेचन किया। असुर राज्यके विरुद्ध अत्रिने क्रान्ति की, परिणामतः असुरोंने उन्हें कारावासमें डाल दिया, और वे वहां अनेक वर्षोंतक कष्ट भोगते रहे। इसीप्रकार पण्डितजीने अपने व्याख्यानोंमें ऋषियोंके क्रान्तिकारक रूपको पाठकोंके सामने प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है।

पण्डितजीने ऋषियोंको उस स्तर पर लानेका प्रयत्न किया है, कि जो सर्वसामान्यके लिए आदर्शरूप ठहर सकें। निरुक्तकारके "यथा कथंचिदपि निर्वक्तव्याः" का आधार लेकर सभी नामोंकी यौगिक व्याख्या कर देनेके पक्षपाती पण्डितजी नहीं हैं। ऋषियोंको वे वास्तविक मानते हैं, वे हमारे लिए आदर्श हैं। इससे वेदोंमें इतिहासका आक्षेप आता है, पर इस आक्षेपसे डरकर पण्डितजी इन्हें यौगिक माननेके लिए तैय्यार नहीं है।

मानवजातिकी उन्नतिके लिए ऋषियोंने जो प्रयत्न किए, उसका वर्णन अथर्ववेदमें ऋषिने इस प्रकार किया है—

भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदः
स्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं
तदस्मै देवा उप संनमन्तु ॥ (अथर्व. १९।४१)

"सब मानवोंका कल्याण करनेवाले आत्मज्ञानी ऋषियोंने प्रारंभसे तप किया और दक्षतासे आचरण भी किया। उससे राष्ट्र, बल और ओजका निर्माण हुआ। इसलिए सब विद्वान् इस राष्ट्रके सामने विनम्र भावसे सेवाके लिए उपस्थित रहें।"

प्रजातंत्रीयशासन प्रणाली

ऋषियोंके प्रयत्नसे राष्ट्रका निर्माण हुआ, उन्होंने राज्यशासनकी स्थापना की। पण्डितजीकी मान्यता है कि ऋषियोंका यह प्रथम राज्यशासन प्रजातंत्रीय ही था। "वैदिक राष्ट्रशासन," "प्रजापति संस्था द्वारा राज्यशासन" "ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श" आदि अपने अनेकों व्याख्यानोंमें पण्डितजीने इस शासन प्रणालीके समर्थनमें वेदमंत्रोंके स्पष्ट प्रमाण दिये हैं।

पण्डितजीका कहना है कि अथर्ववेदके अनुसार सर्वप्रथम वि–राज् अर्थात् राजहीन अवस्था थी। सब प्रजाएं धार्मिक थीं और धर्मानुसार आचरण करनेके कारण राष्ट्रमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था नहीं थी, इसलिए उन प्रजाओंपर शासन करनेवाले किसी शासककी भी आवश्यकता नहीं थी, पर आगे चलकर राष्ट्रमें कुछ राष्ट्रविरोधी तत्त्व पैदा हुए, तब प्रजा भयभीत हो गई कि यदि यह राजहीन अवस्था ही हमेशा बनी रही तो हमारी उन्नति कैसे होगी, लिहाजा वह जनशक्ति उत्क्रान्त होकर ग्रामसभामें परिणित हुई, यह ग्रामसभा ही आगे चलकर समिति या लोकसभामें बदली

और अन्तमें यह समिति या लोकसभा ही आमंत्रण या मन्त्रिमण्डलमें परिवर्तित हो गई। इसी मंत्रिमण्डलमेंसे एक योग्य नेता चुना जाता था जिसके अधिकारमें सारी सभायें कार्य करती थीं, इसी शासककी संज्ञा वेदमें "प्रजापति" हैं। (अथर्व. ८।१०।८, १०, १२)

सभाके सदस्योंकी योग्यता

इन सभाओंका सदस्य उन्हींको बनाया जाता था, जो योग्य होता है। इन सदस्योंकी योग्यताका वर्णन ऋग्वेदका निम्न मंत्र करता है—

आ यद् वां ईयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥
(ऋ. ५।६६।६)

"हे व्यापक दृष्टिवालो ! हे मित्रो ! हम सभी विद्वान् मिलकर ऐसे विस्तृत स्वराज्यके लिए प्रयत्न करें, जिसमें राष्ट्रका शासन बहुत संख्यकोंके द्वारा होता हो।"

इस मंत्रमें "बहुपाय्य स्वराज्य" की कल्पना बहुत उत्तम रीतिसे वर्णित है। इस "बहुपाय्य स्वराज्य" की सभाके सदस्य—

१ ईयचक्षाः- संकुचित दृष्टिवाले न हों। दूरदर्शी हों। राष्ट्रकी आगे आनेवाली स्थितिकी पूरी पूरी कल्पना उनकी आंखोंके सामने हो।

२ मित्र- लोकसभा या विधानसभाके ये सभी सदस्य परस्पर मुष्टामुष्टि या केशाकेशी करनेवाले न हों, प्रत्युत सभी परस्पर मित्रतापूर्वक व्यवहार करनेवाले हों। प्रजाओंके भी मित्रके समान हितकारी हों।

३ सूरिः- ये सभी विद्वान् हों। सभी शास्त्रज्ञ हों। अंगूठे बहादुर न हों।

स्वराज्यकी इससे बढकर उदात्त और उत्कृष्ट कल्पना और कौनसी हो सकती है। पण्डितजी उनके प्रखर विरोधी हैं, जो कहते हैं कि प्रजातंत्रराज्यकी कल्पना सर्वथा अर्वाचीन है और इसके लिए भारतीय पाश्चात्योंके ऋणी हैं। वेदोंमें राजा या सर्वोपरि शासकके लिए "प्रजापति" शब्द आया है।

प्रजापतिकी कथा

वेदोंमें प्रजाको ही शासक या राजाका अंग या अवयव बताया गया है—

विशो मे अंगानि सर्वतः। (यजु. २०)

प्रजायें ही मेरे अवयव हैं। जिसप्रकार मनुष्य अपने शरीरके सभी अवयवोंको परिपुष्ट रखना चाहता है, उसी-प्रकार राजाका कर्तव्य है कि वह अपने अवयवरूपी प्रजाको सर्वतोमना पुष्ट करनेका प्रयत्न करे, क्योंकि—

विशि राजा प्रतिष्ठितः। (वा. यजु. २०)

राजाकी प्रतिष्ठा प्रजामें ही है। प्रजाका सुखदुःख ही राजाका सुखदुःख है। प्रजाकी प्रसन्नतासे ही राजा गद्दीका अधिकारी रह सकता है। प्रजाको यह पूरा अधिकार है कि वह अत्याचारी और निरंकुश शासकको जब चाहे तब पदच्युत करके दूसरेको राज्यपद पर प्रतिष्ठित कर सकती है।

ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मणमें थोडीसी फेरफारके साथ एक कथा आती है कि एक बार प्रजापतिने बलात्कार करनेकी इच्छासे अपनी कन्याका पीछा किया, तब ऋषियोंने रुद्रके द्वारा प्रजापतिका वध करवाया। इस कथामें प्रजापति कौन है, उसकी कन्या कौन है ? आदि प्रश्नोंके सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। "दिवं इति अन्ये उषसं इति अन्ये" इसप्रकार इस कन्याके विषयमें ब्राह्मणकारोंने अनेक कल्पनायें की हैं।

पर पण्डित सातवलेकरजीके मतमें इस कथाका स्वरूप भी पूर्णतया राजकीय ही है। उनके अनुसार यह प्रजापति राजा ही है और उसकी कन्या सभा या समिति ही है। अथर्ववेदमें मंत्र आया है—

सभा च मा समितिश्चावतां
प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ॥ (अथर्व. ७।१३।१)

"प्रजापतिकी कन्या सभा और समिति मेरी रक्षा करें।" सभा और समिति दोनों प्रजापति या राजाकी कन्यायें हैं, "कन्या कमनीया भवति" की उक्तिके अनुसार राजाका कर्तव्य है कि इन दोनोंको अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ बनाये, पर जब वही राजा इन दोनोंको भ्रष्ट करनेकी अभिलाषा करता है, तब राष्ट्रके विद्वान् क्षात्रशक्तिकी सहायतासे उस निरंकुश शासकको पदच्युत करवा दे, या वध करवा दे। इसप्रकार पण्डितजीने प्रजापतिकी कथाको राजनैतिक स्वरूप प्रदान किया है।

दीर्घकालीन दासताके कारण पराभूत एवं पतित मनो-वृत्तिके हिन्दुसमाजका पुनरुत्थान वेदोंमें श्रद्धा उत्पन्न कराकर

और वेदोंमें प्रतिपादित ओजस्वी विचारोंको प्रजाओंमें फैलाकर ही किया जा सकता है।

विश्व-एक विराट् शरीर

वैदिक कालमें समाज व्यवस्था न्यायकी नींव पर खडी की जाती थी। समाजके अधिकारों और आचार विचारोंमें व्यक्तिस्वातंत्र्यके लिए भी पूरा पूरा स्थान था। वेदोंमें समाजको एक विराट् पुरुषके रूपमें माना है। इस विराट् पुरुषका वर्णन पण्डितजीने पुरुषसूक्त-एक अनुशीलनमें किया है। पुरुषसूक्तमें एक मंत्र है—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥
(यजु. ३१।१०)

अर्थात् इस विराट् पुरुषको कितने भागोंमें विभक्त किया? इसका मुख क्या था, बाहू क्या थे और पैर क्या थे? इसका उत्तर इसके अगले ही मंत्रमें इस प्रकारसे दिया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
(यजु. ३१।११)

इस विराट् पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए।"

जो ज्ञानादि श्रेष्ठ गुणोंसे सुशोभित, अध्ययन-अध्यापन करनेवाला और निर्लोभवृत्तिका होता है, वह ब्राह्मण है। शौर्य और पराक्रमके गुणोंसे युक्त क्षत्रिय होता है। खेत और व्यापार करनेवाले वैश्य होते हैं और जो सेवा करते हैं वे शूद्र होते हैं। इन सबके सहकार और भावनासे समाजका जीवन चलता है। इसी व्यवस्थाको वर्णव्यवस्था कहा गया है।

सभी समाज, राष्ट्र एवं व्यक्ति इस विराट् पुरुषके शरीरके अंग प्रत्यंग हैं। जिसप्रकार मानवी शरीरमें सभी अंग सहकारसे रहते हैं, उसीप्रकार विराट् शरीरके सभी अंगोंका सहकार अत्यन्त आवश्यक है।

इस विराट् शरीरके बारेमें पण्डितजी अपने दैवतसंहिताकी भूमिकामें लिखते हैं—

" वेदोंने विश्वका वर्णन एक शरीरके रूपमें है। वह एक विराट् शरीर है। व्यक्ति शरीरमें जिस तरह आत्माका स्थान मुख्य है, उसी तरह विराट् शरीरमें परमात्मा मुख्य है। अथर्ववेदमें इस विराट् शरीरका वर्णन इस प्रकार है—

यस्य भूमिः प्रमा अन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानी तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

" भूमि जिसके पैर, अन्तरिक्ष पेट और द्यौ सिर है, उस महान् ब्रह्मको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्र जिसकी आंखें हैं, अग्नि जिसका मुख है उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है। वायु जिसके प्राण और अपान हैं, अंगिरस् जिसकी आंखें हैं तथा दिशायें जिसके कान हैं, उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है।"

इसीप्रकार इस विराट् शरीरके सहस्रों मस्तकका भी वेदमें वर्णन है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भुतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति ॥
ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥

" हजारों सिर, हजारों आंख और हजारों पैरवाला एक विराट् पुरुष इस भूमिको चारों ओरसे व्याप्त किए हुए है। यहां जो कुछ हो चुका है, या जो कुछ होनेवाला है, वह सब पुरुष ही है। ब्राह्मण इस विराट् पुरुषके मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य दोनों जांघें और शूद्र पैर हैं। इस विराट् पुरुषके मनसे चन्द्रमा, आंखसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि और प्राणसे वायु प्रकट हुआ। नाभिसे अन्तरिक्ष, सिरसे द्यौ, पैरोंसे भूमि और कानसे दिशाएं उत्पन्न हुईं।"

" गीताके ११ वें अध्यायमें इस विराट्पुरुषका बडे विस्तारसे वर्णन है। श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनको अपने विराट् स्वरूपको दिखानेका जहां वर्णन है, वहां उसका अभिप्राय

इस विश्वके विराट् शरीरसे है। पुराणोंमें भी इस विराट पुरुषका वर्णन है।"

देवताओंके इस आधिदैविक अध्ययनके आधार पर पण्डितजीके सामने एक नई चीज आई, वह यह कि परमात्माका यह विराट् शरीर वस्तुतः एक विशाल राज्यशासन भी है। इसमें सभी देव अधिकारीके रूपमें अपना-अपना कार्य करते हैं।

ये सभी देवता तीन क्षेत्रोंमें विभक्त होकर अपना कर्म करते हैं। "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" की उक्तिके अनुसार शरीरके समान ही सर्वत्र ये देवता काम करते हैं। शरीरके क्षेत्रको अध्यात्म कहा है, समाज या राष्ट्रके क्षेत्रकी संज्ञा अधिभूत है और विश्वके क्षेत्रको "अधिदेव" संज्ञा प्रदानकी गई है। इसप्रकार आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक क्षेत्रमें इन देवताओंके रूपोंका दर्शन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ शरीर या अध्यात्ममें अग्नि वाणी, है अधिभूत अर्थात् समाज या राष्ट्रमें वक्ता या विद्वान् और आधिदैविक या विश्वमें वह भौतिक अग्नि है। इस-प्रकार अन्य देवताओंके भी तीनों क्षेत्रोंके रूपोंकी तालिका इसप्रकार बनाई जा सकती है—

अध्यात्ममें	अधिभूतमें	अधिदैवतमें
वाणी	वक्ता	अग्नि
शौर्य	शूर	इन्द्र
प्राण	प्राणी	वायु
कारीगरी	कारीगर	त्वष्टा

इसप्रकार पण्डितजीने देवोंके स्वरूपको वेदोंके अनुसार व्यक्त किया।

ये सभी देव परस्पर सहकारसे रहते हैं, यह सहकार ही राष्ट्रीय संघटन है। ऋग्वेदके अनेक सूक्तोंमें इस राष्ट्रीय संगठनकी महिमाका वर्णन है। ऋग्वेदके १० वें मण्डलका अन्तिम सूक्त संगठन सूक्तके नामसे ही प्रसिद्ध है। उसके सभी मंत्र बोधप्रद हैं—

संगच्छध्वं संवदध्वं स वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
समानो मंत्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

"हे मनुष्यो! मिलकर चलो मिलकर बोलो, तुम्हारे मन ज्ञानयुक्त हों, जिस प्रकार देवगण ज्ञानपूर्वक अपने राष्ट्रकी उपासना करते थे, उसी प्रकार तुम भी करो। तुम्हारे विचार समान हों, तुम्हारी सभायें समान हों, तुम्हारे मन और चित्त समान हों, मैं भी तुम्हारे साथ बैठकर विचार विमर्श करूं और तुम्हारे साथ मिलकर यज्ञ करूं। तुम सबके संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन समान हों ताकि तुम परस्पर मिलकर सुशोभित होओ, आचारों, विचारों और संकल्पोंकी एकात्मता ही राष्ट्रकी शक्तिको दृढ करती है।

इस प्रकार वेद मानवी व्यवहारके लिए दिव्य सन्देश देनेवाले हैं, उनमें शाश्वत सत्य भरा हुआ है। वेदोंका सन्देश युगयुगोंतक कल्याणप्रद होगा। अपनी मासिक पत्रिकाओंके माध्यमसे पण्डितजीने वेदोंमें राजनैतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों पर अनेक लेख लिखे और भारतभरमें व्याख्यान भी दिए। उन्होंने बताया कि वेद ही धर्मके मूल हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंके मूलमें वेद बैठे हुए हैं। गणित और विज्ञान सम्बन्धी अनेकों तथ्य वेदोंमें भी पडे हैं।

चारों वेदोंमें दीनता दर्शक एक भी मंत्र नहीं है। सभी वेदोंमें आत्माकी अपार शक्तिका भण्डार बताया है। ऋग्वेदका ऋषि कहता है।

अहमिन्द्रो न पराजिग्ये इद्धनं न मृत्यवे
अव तस्थे कदाचन।

"मैं इन्द्र हूँ, कभी भी पराजित या मृत्युके वशमें नहीं होता।" मैं यदि इन्द्र हूँ तो स्पष्ट है कि यह मेरा शरीर इन्द्र सभा है। शरीरके विषयमें यह उदात्त भावना यदि प्रत्येक मनुष्यमें व्याप्त हो जाए तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं स्वयंका निर्माण कर सकेगा। समाजके अन्दर दृढमूल हुई हुई धारणायें ही समाजको बना सकती हैं।

पण्डितजीने वेदमंत्रोंमें "सत्यं शिवं सुन्दरं" के दर्शन किए। उसीको उन्होंने जनताके सामने भी प्रस्तुत किया। भारतीय गणराज्यको वैदिक गणराज्यके अनुसार चलानेका मार्ग पण्डितजीने बताया। महर्षि दयानन्दके समान पण्डितजीने भी इस बातका प्रचार किया कि वेद कुछ निश्चित जातियां धर्मावलम्बियोंकी बपौती नहीं है, यह वेदज्ञान सभीके लिए है। वेदमें परमेश्वर स्वयं कहता है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय स्वाय चारणाय॥
(यजु. २६।२)

" परमेश्वर कहता है कि जसे मैं सब मनुष्योंके लिए इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुखको देनेहारी ऋग्वेदादि चारों वेदोंकी वाणीका उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो। परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य व स्त्रियादि और अतिशूद्रादिके लिए भी वेदोंका प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदोंको पढ पढा और सुन सुनाकर विज्ञानको बढाके अच्छी बातोंका ग्रहण और बुरी बातोंका त्याग करके दुःखोंसे छूटकर आनन्दको प्राप्त हों। " (सत्यार्थ प्रकाश पृ. ७५)

पण्डितजी भी इसी मतके अनुयायी हैं। उन्होंने भी इस वादका सर्वत्र प्रचार किया कि वेदोंके अध्ययनका सबको अधिकार है।

पण्डितजीका यह स्पष्ट मत है कि वेदोंमें यज्ञमें पशुबलिका कहीं भी विधान नहीं है। औंधमें बापट दीक्षितके द्वारा यज्ञमें पशुवधके अवसरपर पण्डितजीने अपने पक्षका मण्डन करते हुए कहा था —

(१) यज्ञ वैदिकधर्मका केन्द्र है। यज्ञका बहुत बडा सामर्थ्य है। सका सामर्थ्य अत्यधिक होनेके कारण यह काम बहुत सावधानीसे करना चाहिए।

(२) यज्ञवाचक सभी शब्द हिंसाका निषेध करते हैं। यज्ञका अर्थ " देवपूजा, संगतिकरण और दान " है। देवोंका पूजन, विभिन्न जातियोंका संगठन और परोपकारका भाव यज्ञ शब्दमें निहित है। यज्ञवाचक शब्दोंमें एक शब्द " प्रजापति " भी है। प्रजापतिका अर्थ " प्रजाका पालन करनेवाला।" इसके अलावा यज्ञवाचक शब्दोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द " अ-ध्वर " है। " अ-ध्वर " का अर्थ है हिंसारहित। निरुक्तकारका कथन है- " ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधो अध्वरः " इसप्रकार अध्वर शब्द अहिंसाका वाचक है।

(५) ब्राह्मण ग्रंथमें भी यह स्पष्ट लिखा है कि पशुवधका अभिप्राय पुरोडाशसे पूरा हो सकता है। शतपथ और ऐतरेयमें एक कथा आती है- " पहले देवोंने क्रमशः मनुष्य, घोडा, गाय, मेढा और बकरेकी बलि दी। पर बादमें उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यज्ञीय भाग इन पशुओंमेंसे निकलकर भूमिमें प्रविष्ट हो गया और चावल तथा जौके रूपमें उगा। उनके आटेके हवनसे भी उतना ही कार्य हो सकता है जितना कि पशुबलिसे। इसलिए चावल और जौके आटेसे ही हवन करना चाहिए, इसके बाद मांसके हवन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। (शतपथ. १।२।३।६-९) ऐतरेय ब्राह्मणमें भी इसीप्रकार कहा है- (ऐत. ब्रा. २।९) इसका तात्पर्य यह है कि यज्ञमें पशुवधकी आवश्यकता नहीं है, यज्ञका कार्य धान्यके हवनसे भी सम्पन्न हो सकता है।

(६) महाभारतके शान्तिपर्वमें अश्वमेध जैसे महायज्ञ भी पशुवधके बिना ही किए गए (शान्ति. अ. ३३६) यज्ञमें उत्तम खीरकी आहुति दी जाए। वेदोंके मंत्रोंका भाव धान्यकी आहुति देनेका ही है। " अज " का अर्थ धान्य है, बकरा नहीं।

अजसंज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ।
नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः।
(महा. शान्ति. ३३७)

" अज संज्ञक बीजोंकी ही आहुति देनी चाहिए, यज्ञमें बकरेका वध करना ठीक नहीं। जहां पशुका वध किया जाए, वह सज्जनोंका धर्म नहीं है।

(७) सोमयागके लिए आजकल सोमवल्ली नहीं मिलती, उसके अभावमें एक प्रकारकी जंगली वनस्पतिका उपयोग होता है।

इसप्रकार पण्डितजीने अनेक वैदिक तथ्योंपर प्रकाश डाला।

उपनिषदोंमें राष्ट्रीयता

पण्डितजीके समयका वातावरण राष्ट्रीयतासे भरपूर था। चारों ओर स्वतंत्रताका शंखनाद हो रहा था। लोग अपनी मातृभूमिको स्वतंत्र करानेके लिए अपना सर्वस्व समर्पित किए दे रहे थे। स्वयं पण्डितजी भी मातृभूमिके सच्चे उपासकोंमेंसे एक थे। देशकी स्वतंत्रता उनका भी उद्देश्य था। वे भारतीयोंमें जागृति उत्पन्न करना चाहते थे। लोगोंके हृदयोंमें देशप्रेम और देशभक्तिके भाव पैदा करके उन्हें राष्ट्रहितके कार्योंमें प्रेरित करना चाहते थे। पण्डितजी सर्वप्रथम देशकी सीमाओंको दृढ और सुरक्षित देखना चाहते थे ताकि कोई भी शत्रु इस देशपर आक्रमण न कर सके।

" शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते " के वचनमें उन्हें पूरा विश्वास था। इसीकारण पण्डितजीने प्रायः सभी भारतीय शास्त्रोंमें राष्ट्रीयताके दर्शन किए। इन शास्त्रोंके राष्ट्रीयताके पक्षको लोगोंके सामने प्रस्तुत करके भारतीय जनताको राष्ट्रीयभावोंसे भरपूर करना चाहते थे।

पण्डितजीका मत है कि वेदोंमें प्रायः सर्वत्र शत्रुओंको मार भगानेका आदेश है। वह कभी भी यह नहीं सिखाता कि न्यायके दिनकी प्रतीक्षा करते हुए हाथ पर हाथ धरे बैठे रहो। उसका आदेश तो ईंटका जवाब पत्थरसे देनेका है। वेद स्पष्ट कहते हैं—

स्थिराः वः सन्त्वायुधा पराणुदे
वीळु उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी
मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ (ऋ. १।३९।२)

" तुम्हारे हथियार शत्रुदलको हटानेके लिए अटल तथा सुदृढ हों और उनकी राहमें रुकावटें खडी करनेके लिए, प्रतिबन्ध करनेके लिए अत्यधिक बलयुक्त और शक्तिसम्पन्न भी हों। तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य अतीव प्रशंसार्ह और सराहनीय हों; कपटी लोगोंका बल न बढे। "

वीरपुरुष अपने हथियारों एवं शस्त्रास्त्रोंको बलयुक्त तीक्ष्ण तथा शत्रुओंके शस्त्रोंसे भी अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षम बनावें। सदाके लिए सतर्क एवं सचेष्ट रहें कि वे शत्रुदलसे मुठभेड या भिडंत करते समय यथेष्ट मात्रामें प्रभावशाली ठहरें (ध्यानमें रखना चाहिए कि कदापि विरोधी तथा शत्रुसंघके हथियार अपने हथियारोंसे बढकर प्रबल तथा प्रभावशाली न होने पायें) और कपटाचरणमें न झिझकने-वाले शत्रुओंका बल कभी न वृद्धिंगत हो।

—पं. सातवलेकरकृत " ऋग्वेदका सुबोधभाष्य "
से उद्धृत : पृ. ९५ (प्रथम भाग)

इसप्रकार पण्डितजीने प्रायः अपने सभी ग्रंथोंमें राष्ट्रीयता का ही विचार किया है। यहांतक कि उपनिषदोंमें भी, जिन्हें सभी मोक्षशास्त्र या अध्यात्मशास्त्र मानते हैं, पण्डितजीने राष्ट्रीयताके दर्शन किए। पण्डितजी अपने उपनिषद्के भाष्यकी भूमिकामें लिखते हैं –

" ईशोपनिषद्– के प्रथम मंत्रके " जगत्यां जगत् " पदके द्वारा ईशोपनिषद्के ऋषिने सामाजिक कर्तव्यका बोध दिया है। जगत्यां जगत् " शब्दमें " समुदाय और व्यक्ति " की कल्पना है। " समष्टिव्यष्टिरूपसे जो है, उस सब विश्वमें ईश्वर व्यापता है। " यह आशय प्रथम मंत्रके पूर्वार्धका है। इस " समष्टि और व्यष्टिवाद " को आगे ८ वें मंत्रमें " संभूति और असंभूति " पदसे व्यक्त किया गया है। उदाहरणार्थ—

(१) सं+भू– मिलना, एक होना, संबन्धित होना।
(२) संभव– मेल, मिलाप, एकता, सहकार, सहयोग।
(३) संभूत– मिला हुआ।
(४) संभूति– संमेलन, मिलना, एक होना, संघटना।
(५) संभूय– एक होकर, साथ होकर, सहकार्य करके, संघबनाकर।
(६) संभूय समुत्थान– मिलकर ऊपर उठनेका यत्न करना, मिलकर एक होकर शत्रुपर हमला करना।

इन अर्थोंको देखनेसे पाठकोंको पता लग जाएगा कि संभूति शब्दमें संघका भाव है। इसका अधिकार विचार करनेके लिए " सं+भू " धातुसे बने हुए शब्दोंका प्रयोग ही देखिए—

वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म संभूय कुर्वते।
तत्संभूयसमुत्थानं व्यवहारपदं स्मृतम् ॥
(नारदस्मृति)

" वैश्य आदि लोग मिलकर (संभूय) सहकारिताके साथ व्यवहार करते हैं, उस व्यवहारको " संभूय समुत्थान " कहते हैं। "

यह संभूय समुत्थान अर्थात् सहकारिताका व्यवहार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंमें अपने अपने कार्यके लिए हुआ करता है। इसप्रकार ईशोपनिषद्के " संभूति " शब्दसे संघभाव की और असंभूति शब्दसे व्यक्तिभावकी भावना प्रकट होती है। इसी उपनिषद्के ८-१० मंत्रमें कहा है—

" जो केवल व्यक्ति स्वातंत्र्यके भक्त होते हैं, वे गिरते हैं, परन्तु जो केवल संघशक्तिमें ही रमते हैं, वे उनसे भी अधिक गिरते हैं। व्यक्तिभाव और संघभावका फल भिन्न भिन्न है, ऐसा हम ज्ञानियोंके उपदेशसे सुनते आए हैं। जो व्यक्तिभाव और संघभावको साथ साथ उपयोगी समझते हैं, वे व्यक्तिभावसे दुःखोंको दूर करके संघभावसे अमर होते हैं।

पण्डितजीकी मान्यता है कि ईशोपनिषद्के प्रथम मंत्रमें ही राष्ट्रीय भावनाओंका उपदेश है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।

इस जगत्में जो भी कुछ है, वह सब ईशा अर्थात् बलशाली के द्वारा शासनके योग्य है। जो मनुष्य बलशाली है, वही इस जगत्पर शासन कर सकता है। यह ईश भी अपनी शक्तिसे ही बलवान् हो, दूसरेके बलके जोर पर राष्ट्रपर शासन न करे। यही बात राष्ट्रीय नेताके बारेमें भी लागू है। राष्ट्रका नेता अपनी शक्तिसे ही बलशाली हो।

इसप्रकार पण्डितजीने उपनिषद्में भी राष्ट्रीयताके भावोंको खोजनेका प्रयास किया है।

गीता-एक राष्ट्रीय काव्य

वैदिकधारा पर अनुप्राणित गीताको भी पण्डितजीने आध्यात्मिक ग्रंथकी अपेक्षा राजनैतिक ग्रंथ ही अधिक माना है। गीताका उद्देश्य मनुष्यको इस संसारसे विमुख करना नहीं है, अपितु इसी संसारमें रहकर अपने राष्ट्रकी उन्नति करना है। गीताने कर्मसंन्यासके अभिलाषी अर्जुनको कर्मयोगकी तरफ प्रेरित किया।

पण्डितजीने गीता पर अपनी टीका पुरुषार्थबोधिनीमें धृतराष्ट्र और अर्जुन आदि संज्ञाओंकी व्याख्या ही बडी नवीन की है। धृतराष्ट्रका अर्थ करते हुए पण्डितजी अपनी व्याख्यामें लिखते हैं– "यह "धृत–राष्ट्र" है। यह राष्ट्रको "धृत", अर्थात् हडपकर बैठा हुआ है। जो वास्तविक अपनी चीज नहीं अपितु दूसरेकी है, उस पर अन्यायसे और पाशवी बलसे अपना अधिकार जमानेका यत्न कर रहा है। दूसरेका राष्ट्र पाशवी बलसे अपने आधीन करना, उस पर अपना अधिकार सदाके लिए स्थिर रखनेका यत्न करना, उसके अधिकारी पुरुष अपना स्वराज्य वापस मांगने लगे तो उनको न देनेके लिए प्रयत्न करना और उनको "अनधिकारी" सिद्ध करना, यही "धृत–राष्ट्र" यहां कर रहा है। पाशवी बलसे दूसरोंके स्वत्व पर अधिकार करनेवाले साम्राज्यवादी अन्धे ही होते हैं। और उसके अनुयायी भी अन्धे होते हैं। इसीलिए महाभारतमें धृतराष्ट्रको अन्धा बताया गया है। दूसरी तरफ अर्जुन वस्तुतः अपने राज्यका अर्जन करनेवाला है। धृतराष्ट्रने जो राज्य दबा लिया है। उसे फिर प्राप्त करना चाहता है। स्वराज्यके लिए प्रयत्न करनेवाले हमेशा दुःखमें ही रहते हैं। इस प्रकार एक तरफ साम्राज्यवादी अन्धा धृतराष्ट्र है और दूसरी तरफ अपने राज्यका अर्जन करनेवाला स्वराज्यवादी "अर्जुन" है। साम्राज्यवादी और स्वराज्यवादीका यह युद्ध सनातनकालसे चला आता है।"

इस प्रकार पण्डितजीने अपनी गीता टीकामें तद्वत संज्ञाओंकी एक नवीन ही व्याख्या प्रस्तुतकी है।

राजविद्या राजगुह्य

पण्डितजीकी धारणा है कि गीता एक राज्यशास्त्र (Political Treatise) है। उसमें अनेक राजनैतिक सिद्धान्तोंकी विवेचना की गई है। गीताके नवम अध्यायका दूसरा श्लोक राज्यशासनकी रूपरेखा स्पष्ट करता है—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

इसका अर्थ पण्डितजीने इस प्रकार किया है– "यह राज्यशासनकी विद्या है, यह श्रेष्ठ राजाओंका (राजगुह्य) राज्यशासन चलानेका गुह्यज्ञान है, यह मनुष्यको उत्तम और पवित्र करनेवाला ज्ञान है, (अ–व्ययं) इसमें कोई आंचक व्यय नहीं होता, इससे उत्तम लाभ होता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव प्रत्येक कर सकता है, यह (कर्तुं सुसुखं) आचरण करनेके लिए अत्यन्त सुगम है। यह राज्यशासन चलानेकी मुख्य विद्या है। इस प्रकार राज्यकार्यसे मनुष्यको अखण्ड कल्याण प्राप्त होता है और कभी मनुष्यकी दुर्दशा नहीं होती। जो लोग इस राज्यशासन पर विश्वास नहीं रखेंगे, वे श्रेष्ठ पुरुष नहीं कहायेंगे और वे अनन्त दुःख भी भोगेंगे।"

इस प्रकार पण्डितजीने गीताको भी एक राजनैतिक शास्त्र ही माना है। पण्डितजी जिस समय कार्यक्षेत्रमें प्रविष्ट हुए, उस समय भारत गुलाम था, उस समयका सारा वातावरण दासताकी भावनाओंसे दूषित हो चुका था। अतः पण्डितजीकी भी यही अभिलाषा थी कि भारत स्वतंत्र हो, वे भारतीयोंमें जोश और उत्साह भरना चाहते थे। संभवतः यही कारण था कि पण्डितजीने वेदों और गीताके स्वराज्यके सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला। वे चाहते थे कि भारतका हर एक व्यक्ति अपने जीवनके प्रति निष्ठावान् और श्रद्धावान् बने, अपने राष्ट्रकी सेवामें वह सदा तत्पर रहे। पण्डितजीके हृदयमें राष्ट्रीयताकी यह धारा बहुत गहराई तक पहुंच गई थी।

विश्वराज्यकी कल्पना

पण्डितजीकी यह कल्पना वैदिक जगत्में सर्वथा नवीन है। " यथा पिण्डे तथा ब्रह्मण्डे " की उक्तिके अनुसार जिस प्रकार एक राष्ट्रमें राज्यशासन चलता है, उसी प्रकार विश्वमें भी राज्यशासन चलना चाहिए। विश्वमें सभी अनुशासनबद्ध है, अतः इसके पीछे भी किसी एक शासकका शासन अवश्य होना चाहिए। यह एक सूत्र था जो पण्डितजीके हाथमें एक दिन आ गया, पर अब प्रश्न यह था कि कौनसा देवता इस विश्वराज्यके किस पद पर अधिष्ठित है। इस प्रश्नके समाधान करनेके लिए पण्डितजीने सभी देवताओंके गुणोंका अध्ययन किया। इस अध्ययनके बाद उन गुणोंके आधार पर निश्चित किया कि कौनसा देवता किस पद पर अधिष्ठित है। इस अध्ययनके आधार पर मूर्तरूपमें आई हुई कल्पनाका स्वरूप इस प्रकार है—

परब्रह्म- यह विश्वराज्यका राष्ट्रपति है। जिस प्रकार प्रजातंत्रीय शासनमें राष्ट्रपतिका अधिकार केवल इतना ही होता है कि वह लोकसभाके द्वारा पास किए गए प्रस्तावों पर हस्ताक्षर कर दे, शेष सब अधिकार प्रधानमंत्रीके हाथोंमें होते हैं, उसी प्रकार यह परब्रह्म भी निर्विकार एवं निष्क्रिय होनेके कारण विश्वराज्यमें अत्यन्त न्यून अधिकारोंवाला है-

परमात्मा- यह विश्वराज्यका प्रधानमंत्री है। विश्वराज्यका सब कर्त्ताधर्त्ता और संहर्ता यही है। यही सारे विश्वराज्यके चक्रको चलाता है। गीताके शब्दोंमें—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

यही परमात्मा विश्वराज्यके संचालनके लिएमंत्रिमण्डलका निर्माण करता है। उनमें—

अग्नि- विश्वराज्यका शिक्षामंत्री है। यह ज्ञानका प्रसार करता है। इसकी सहायताके लिए बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति ये दोनों उपशिक्षामंत्रीका कार्य करते हैं।

इन्द्र- रक्षामंत्री है। इसने बलासुर, वृत्रासुर, शुष्णासुर आदि अनेकों असुरोंको मारकर विश्वराज्यकी अनेक बार रक्षा की थी। यह " वज्रभृत्, " " शिप्री " (शिरस्त्राण धारण करनेवाला) और " कवची " है। इसकी सहायता उपेन्द्र या विष्णु उपरक्षामंत्रीके रूपमें करता है। रुद्र और मरुत् इसके सैनिक हैं।

अश्विनौ- ये दोनों देव स्वास्थ्यमंत्री हैं। इनका काम लोगोंके स्वास्थ्यकी देखरेख करना है। ये दोनों ही " देवानां भिषजौ " हैं। इनमें एक औषधि चिकित्सामें प्रवीण है तो दूसरा शल्य चिकित्सामें। इन दोनोंने अन्धे और बूढ़ेच्यवनको कायाकल्पके द्वारा तरुण बनाकर अनेक तरुणियोंका पति बनाया। युद्धमें टांग टूट जानेके कारण चलने फिरनेमें असमर्थ विश्पलाकी लोहेकी टांग लगाकर उसे चलने फिरने योग्य बनाया। अन्धे ऋज्राश्वकी आंखें ठीक कीं। इस प्रकार ये स्वास्थ्य संरक्षणका काम करते हैं। इसकी सहायताके लिए औषधि, अन्न, गौ उप स्वास्थ्यमंत्री हैं।

इसी प्रकार पण्डितजीने अन्य देवोंके पदोंकी भी कल्पना की है। ये सभी देव या पदाधिकारी अपने कामोंमें दक्ष, अप्रमादी, ईमानदार हैं, कभी भी दूसरेके काममें बाधा नहीं डालते। इन देवोंका राज्यशासन मानवोंके लिए आदर्श है। पण्डितजी यही कहते हैं कि यदि इस राज्यशासनके आदर्शोंके अनुसार राष्ट्रीय राज्यशासनका भी व्यवहार चले तो इसी पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना की जा सकती है।

पं. सातवलेकरजीने राष्ट्रवादके साथ साथ व्यक्तिवादको भी उतनी ही महत्ता प्रदान की। वे इस सिद्धान्तके प्रबल पक्षपाती हैं कि राष्ट्रको सुधारनेसे साथ ही साथ व्यक्तिको सुधारना आवश्यक है। व्यक्तिमें जबतक अपने शरीर, जीवन और कार्यके प्रति श्रद्धा एवं आस्था नहीं उत्पन्न की जाती, तबतक उसका सामाजिक जीवन भी सुधर नहीं सकता। इसी दृष्टिसे पण्डितजीने अध्यात्मतत्त्वकी व्याख्या की।

बौद्ध निराशावाद एवं वैदिक आशावाद

अध्यात्मके अन्तर्गत मानवशरीरका अध्ययन पण्डितजीने अपने लेखों एवं ग्रंथोंमें किया है। अपने इन ग्रंथोंमें पण्डितजीने बौद्धदर्शनके निराशावाद पर बडा ही प्रखर आक्रमण किया है। उनका कहना है कि यह बौद्धधर्म ही हमारे अधःपतनका कारण बना है। बौद्धोंके " सर्वं दुःखं सर्वं क्षणिकं, सर्वं शून्यं पूयविण्मूत्रमात्रमिदं शरीरं " के सिद्धान्तने सारे भारतवासियोंको कायर बना दिया, उनको इस संसार एवं जीवनसे विरक्त बना दिया। सभी शरीरसे घृणा करने लगे, परिणामतः बौद्धभिक्षुओंकी संख्या बढती गई और देशकी रक्षा करनेवाला कोई न बचा। चन्द्रगुप्तमौर्यने चाणक्यकी सहायतासे एक विशाल आर्यसाम्राज्यकी स्थापना की, साम्राज्य स्थापनाके बाद चाणक्यने सबसे पहला काम

जो किया वह था बौद्धोंको राज्यसे निर्वासित करना। पर चन्द्रगुप्तके पोते अशोकके शासनकालमें इन भिक्षुओंने फिर अपने सिर उठाये और उन्होंने अशोकको भी आत्मसात् कर लिया। उसी दिनसे भारतका दुर्भाग्य शुरु हुआ। बौद्धोंकी अहिंसाने सभी भारतीयोंको निष्क्रिय बना दिया और शत्रुओंने इस अवसरका लाभ उठाकर सारे भारतको पैरोंतले कुचल डाला। भारत सदियोंतक दास रहा। यदि बौद्धधर्म अस्तित्व में न आता तो भारतीय इतिहासका नक्शा आज कुछ बदला हुआ ही नजर आता।

बौद्धसिद्धान्त निराशावादका प्रसार करता है। वह मानवी शरीरको हेय दृष्टिसे देखता है, इसके विपरीत वैदिक सिद्धान्त पूर्णतया आशावादी है। पण्डितजीने वेदप्रतिपादित इन आशावादी सिद्धान्तोंका अपने ग्रंथोंमें जगह जगह पर उल्लेख किया है। वेदोंका उपदेश है " मनुष्यो ! इस संसारमें सौ वर्षतक कर्म करते हुए जीओ। मातृभूमिको अपनी माता समझो और इसकी रक्षाके लिए स्वयंको भी न्योछावर कर दो। "

संसार आनन्दका स्रोत

जिस संसारको बौद्धधर्म दुःखोंका भण्डार मानता है, उसीको वेद आनन्दका स्रोत मानता है। उपनिषद्का स्पष्ट कथन है—

आनन्दादेव इमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

" आनन्दसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्दके आश्रयसे रहते हैं और अन्तमें मरकर आनन्दमें ही लीन हो जाते हैं। परमात्मा आनन्दस्वरूप है फिर उसीसे उत्पन्न यह संसार दुःखमय कैसे हो सकता है। जल प्यास बुझाता है, अग्नि जीवन चलाता है, सूर्य जड जंगमकी आत्मा है, फिर इस संसारमें दुःख कहां ? पण्डितजी दुःख या सुखको मनोगत (Subjective) मानते हैं वस्तुगत (Objective) नहीं। पदार्थोंमें ऋषियोंने आनन्दके दर्शन किए, उन्हीं पदार्थोंमें बौद्धोंने दुःखके दर्शन किए। अतः यह देखनेवालेके मनपर निर्भर है।

इस प्रकार जिस शरीरको बौद्धोंने अपवित्र मानकर हेय या घृणाकी दृष्टिसे देखा, वही मानव शरीर वैदिक ऋषियोंकी दृष्टिमें देवोंका एक पवित्र मन्दिर है।

ऐतरेय उपनिषद्में एक कथा आई है, जो इस प्रकार है—

ताभ्यो गामनयत्,
ता अब्रुवन् न वै नोऽयमलमिति।
ताभ्यो अश्वमानयत्,
ता अब्रुवन् न वै नोऽयमलमिति।
ताभ्यः पुरुषमानयत्,
ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति।
पुरुषो वाव सुकृतम्।
ता अब्रवीत् यथायतनं प्रविशतेति।

एक बार देवोंके आगे ईश्वरने एक गाय लाकर खडी कर दी तो देवोंने कहा कि इसकी देह हमारे लिए अनुकूल नहीं है। तब ईश्वरने घोडा लाकर खडा कर दिया, उसे भी देवोंने पसन्द नहीं किया, अन्तमें ईश्वरने एक मनुष्यका शरीर लाकर खडा किया, तब उसे देखकर सब देव हर्षित होकर बोले– " यह उत्तम देह है। " देवोंको मनुष्य शरीर पसन्द आ गया। तब ईश्वरने देवोंसे कहा कि– " तुम सब इस शरीरमें अपने अपने योग्य स्थानमें प्रविष्ट हो जाओ। " ये देव इस शरीरमें किस किस जगह पर जाकर प्रतिष्ठित हो गए इसका भी पूरा विवरण ऐतरेय उपनिषद्में दिया गया है—

" अग्नि वाणी बनकर मुखमें प्रविष्ट हुआ, वायु प्राण बनकर नाकमें प्रविष्ट हुआ, सूर्य चक्षु बनकर आंखमें प्रविष्ट हुआ आदि। इस प्रकार यह शरीर देवोंका एक पवित्र मन्दिर है, यही सप्त ऋषियोंका पवित्र आश्रम है—

सप्तः ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जाग्रतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

(वा. यजु. ३४।५५)

" इस शरीरमें दो आंख, दो नाक, दो कान और एक मुख ये सात ऋषि बैठे हुए हैं, वे हमेशा इस शरीरकी सुरक्षा किया करते हैं। इसी शरीरमें प्राण अपान ये दो देव ऐसे हैं जो हमेशा जागते रहते हैं, कभी नहीं सोते। इन दो देवोंके सोनेका मतलब है मृत्यु। "

शरीर–एक अयोध्या

अथर्वमें इस शरीरका वर्णन एक अयोध्यानगरीके रूपमें आया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रि प्रतिष्ठिते
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ।
(अथर्व. १०।२।३१-३२)

" यह मानव शरीर आठ चक्रों और नौ द्वारोंवाली देव-नगरी अयोध्या है। इस नगरीमें एक हिरण्मय कोष है, जो तेजसे व्याप्त स्वर्ग ही है। तीन अरों और तीन आधारोंवाले इस सुवर्णमय कोशमें आत्मारूपी यक्ष रहता है। यह सभी आत्मज्ञानी जानते हैं।

यह शरीर देवोंकी नगरी है, सात ऋषियोंका पवित्र आश्रम है, अमृतसे युक्त स्वर्गधाम है। इन सबकी स्थितिको जानकर दीर्घजीवन प्राप्त करनेवालोंको पुरुष कहते हैं। देवोंकी एक दूसरी संज्ञा निर्जर है। जहां ये रहते है, वहां जरा या बुढापा फटकता भी नहीं। देवोंका काम अमृत देना है। शरीरमें स्थित इन देवोंसे ब्रह्मज्ञानी अमृत प्राप्त करता है और दीर्घजीवी बनता है।

इन्द्र इन सब देवोंका अधिष्ठाता है। वह हृदय स्थानमें आत्माके रूपमें बैठा हुआ है—

अहं इन्द्रो न पराजिग्ये । (ऋ. १०।४८।५)

" मैं इन्द्र हूँ, कभी मेरी पराजय नहीं हो सकती। " मानव देह सम्बन्धी यह उदात्त कल्पना वेदोंमें प्रतिपादित है। पण्डितजीकी यह निश्चित धारणा है कि जबसे भारतवासी इन सच्चे देवोंको भूलकर अपने शरीरसे विरक्त होने लगे, तभीसे उनका अधःपतन शुरु हो गया। सन्त तुकारामने ठीक ही कहा है—

तुका म्हणे कैसे आंधळे हे जन
गेले विसरून खऱ्या देवा ।

ये देव स्फूर्तिदायक हैं। जिस प्रकार महापुरुषोंके जीवन चरित्रको पढनेसे स्फूर्ति मिलती है, उसी प्रकार इन देवोंका चरित्र भी स्फूर्तिदायक है। इसी दृष्टिसे पण्डितजी कहते हैं- " वैदिक देवताओंके वर्णन उन उन ध्येयवादी आदर्श पुरुषोंके वर्णन हैं। इसीलिए उन वर्णनोंको पढकर मनुष्य अपने सामने उन आदर्शोंको रख सकता है। हमारे समाजमें मानवी जीवनके विषयमें घृणित कल्पनाओंका प्रचार करनेवालोंने समाजकी बहुत बडी हानि की है। मनुष्यकी देह अपवित्र है, अतः उपवास और तपस्या आदिके द्वारा उसका नाश करना ही उचित है, इस प्रकारकी घातकी कल्पना वेदोंमें नहीं है। दुर्भाग्यवश इस अवैदिक विचारको आजका हमारा समाज मजबूतीसे पकडे ही है। "

दैवतसंहिताकी रचना

पण्डितजीके द्वारा वेदसंहिताओंकी यह व्यवस्था सर्वथा नवीन है। पण्डितजीने जब संहिताओंका अध्ययन किया तब यह पाया कि मंत्रोंका कोई क्रम नहीं है। न ये मंत्र ऋषियोंके क्रमके अनुसार ही व्यवस्थित हैं न देवताक्रमसे ही। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें अनेकों ऋषियोंके विभिन्न सूक्त हैं, तो षष्ठ मण्डल केवल वसिष्ठ ऋषिका है और नवम मण्डलके ऋषि विभिन्न हैं पर देवता पवमान ही। वर्तमान संहिताका क्रम पण्डितजीके कुछ समझमें नहीं आया। अतः उन्होंने चारों वेदोंकी संहिताओंको एक क्रमसे व्यवस्थित करनेका निश्चय किया। पर प्रश्न था कि किस क्रमसे लगाया जाए ऋषिवार या देवतावार। इस प्रश्नका समाधान करते हुए पण्डितजी दैवत संहिताकी भूमिकामें लिखते हैं- " ऋषियोंके लिए देव आदर्शरूप हैं। गोपथ ब्राह्मणकारका कथन है " यत् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि " जो देवोंने किया वही मैं भी करूं। देवोंके मार्गपर ऋषि चलना चाहते हैं। ऋषि उपासक हैं और देव उपास्य। उपासक ऋषि उपास्य देवोंके गुणोंकी उपासना करके अर्थात् उन्हें अपने अन्दर धारण करके देववत् बनना चाहते है। इसलिए देव बडे हैं और ऋषि छोटे। उसी दृष्टिसे मैंने इन संहिताओंको देवताक्रमसे ही व्यवस्थित करनेका प्रयास किया है "। पण्डितजीकी यही कल्पना उनके ग्रंथ " दैवतसंहिता " की जन्मदात्री थी। कतिपय रूढिवादी विद्वानोंने, जो वेदोंके प्राचीनकालसे चले आनेवाले इस रूपमें कोई फेरफार देखना नहीं चाहते, पण्डितजीके इस कार्यका विरोध किया। पर इस ग्रंथसे वेदोंपर संशोधन कार्य करनेवालोंको बहुत बडा लाभ हुआ। इस ग्रंथमें पण्डितजीने देवोंके चारों वेदोंमें बिखरे हुए मंत्रोंको एक जगह लाकर रख दिया।

पण्डित सातवलेकरजीने इसप्रकार अपने अनेक ग्रंथों द्वारा वेदोंमें राजनैतिक और राष्ट्रीय विचार उत्तम रीतिसे बताये हैं। उन विचारोंके पीछे पण्डितजीका उद्देश्य लोगोंको इसी तथ्यसे परिचित कराता रहा है कि वैदिक ऋषि जटा बढाकर अर्धनग्न अवस्थामें रहकर कन्दमूल फलपर येन केन प्रकारेण

जीवन निर्वाह करनेवाले, जगत्को मिथ्या माननेवाले और शरीरको अपवित्र वस्तु माननेवाले नहीं थे। जगत् और शरीरके सम्बन्धमें यह कल्पना तो बुद्धकालके बाद उत्पन्न हुई और पौराणिकोंने इसकी जडें और गहराईतक पहुंचा दीं। ऋषियोंका वास्तविक तत्त्वज्ञान यदि देखना हो तो मूलवेदोंका आधार ही पकडना चाहिए।

अन्तरतमकी पुकार

पण्डितजीका यह निश्चित मत है कि यदि भारतका पुनरुत्थान करना हो तो हमें वैदिक विचारधाराको आत्मसात् करना होगा, हमें वेदोंकी तरफ लौटना होगा। घर घरमें हमें वैदिक विचारधाराका प्रचार करना पडेगा। अपने लेखनों एवं ग्रंथों द्वारा हमें वेदोंको सर्वसाधारणतक पहुंचाना पडेगा। उनसे जो कोई मिलने आता है, उससे पण्डितजी वेदोंकी दुरवस्थाकी कहानी कहते हैं। यह वस्तुतः उनकी वाणी नहीं कहती, यह तो उनके अन्तरतमकी पुकार है, जो वैदिक विचारधाराको सब भारतमें प्रचारित होते हुए देखनेके लिए व्याकुल है। उनका अन्तरतम सारे भारतमें वेद-भगवान्की उपासना देखना चाहता है। यही उनके जीवनका एक मात्रका लक्ष्य है, एकमात्र ध्येय है।

\+ \+ \+

कतिपय संस्मरण

☆

बावला सोनबा

पण्डित सातवलेकरजी बचपनमें सावन्तवाडीमें पढते थे। वहां उन्हें लोग "सोनबा" कहते थे। सावंतवाडीमें भी एक चट्टानपर बैठकर प्रकृतिपर टकटकी लगाये रहना और उसके आधारपर चित्रोंका अंकन करना "सोनबा" का प्रतिदिनका काम था। इसलिए लोग सोनबाको "बावला सोन्या" कहा करते थे। इनके गुरु तात्या मालवणकर इन्हें "हठयोगी सोन्या" कहा करते थे।

ड्राइंगकी तीसरी परीक्षा देकर सोनबा छुट्टीमें घर आए। उनसे मिलने उनके सावंतवाडीके सहपाठी हलदणकर और चुडेकर कोलगांव आए। उन्होंने एक स्त्रीसे पूछा– "सोनबा सातवलेकरका घर कहां है ?"

स्त्रीने उत्तर दिया– "मुझे नहीं मालूम।"

दूसरी एक स्त्री उधर हीसे गुजर रही थी, सुनकर वह बोली– "चित्र बनाता है वही लडका न ?"

हां ! !

तब दूसरी स्त्री पहिलीसे बोली– "अरी ! वही बावला सोन्या ! ! उसीको ये पूछ रहे हैं।"

और पासमें ही सोनबाकी मां खडी हुई यह सब कुछ सुन रही थी।

ø ø ø

तुम्हारा "सोनबा" एक पैसा भी नहीं लेगा

आजके सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री शंकरराव किर्लोस्कर लाहौरमें पण्डितजीसे चित्रकला सीखते थे। उनका रहना, खाना, पीना सब पण्डितजीके यहां ही। शंकररावके पिताजीने अपने पुत्रकी शिक्षाके लिए खर्च देना चाहा, पर पण्डितजी बोले– "यह तुम्हारा सोनबा एक भी पैसा नहीं लेगा।"

खर्च भी नहीं और अन्तमें गुरुदक्षिणा भी लेनेसे इन्कार। तब शंकररावकी माताजीने पण्डितजीकी गृहलक्ष्मीके लिए सोनेकी चार चूडियां भेजीं, पर उन्हें लेता कौन ? वे चूडियां वापस कर दी गईं और साथ ही पण्डितजीका भी पत्र गया "किर्लोस्कर–सातवलेकर परिवारमें अपनत्व यह अपनत्व ही रहे, इसमें किसी तरहकी कृत्रिमताकी जरूरत नहीं है।"

ø ø ø

चिन्तातुर सातवलेकर

सन् १९४१ की घटना। औंधमें एकदिन पण्डितजीकी धर्मपत्नी सौ. सरस्वतीबाई पेटदर्दसे हैरान थीं। संयोग ऐसा कि उस दिन औंधमें एक भी डॉक्टरका पता नहीं। शामको पेट दर्दने और जोर आजमाया, लिहाजा हाथ पांव ठण्डे हो गए। परिवारके सदस्य सेक करने लगे। इतनेमें ही कम्पाउण्डरको याद आया कि रोगीके बेहोशीकी अवस्थामें डॉक्टर रोगीको एक तरहकी गोली देते थे। याद आते ही

\+

उसने सौ. सरस्वतीबाई पर यह प्रयोग कर ही तो डाला। यह एक साहस ही था। पर उसका नतीजा नजर आने लगा और रातको ग्यारह बजेके बाद कहीं जाकर रोगीको होश आया।

इतने लम्बे समय तक पण्डित अपनी धर्मपत्नीकी खाटके पास खडे रहे। आंखें गीलीं, चिंतातुर अन्तःकरण।

ø ø ø

समाजसेवी पण्डितजी

सन् १९४७ की घटना। उस समय पण्डितजीकी उम्र ८० वर्षकी। एक दिन पण्डितजी पूनाके लक्ष्मी मार्गपर स्थित हिन्दीप्रचार संघके कार्यालयसे बाहर निकले और उन्होंने एक स्त्रीके पीछे पीछे एक पांच वर्षकी लडकीको जाते हुए देखा। देखनेवालोंके लिए यह सामान्य दृश्य था, पर पण्डितजीकी सूक्ष्म नजरोंने ताड लिया कि यह माजरा कुछ और ही है। उन्होंने ताड लिया कि यह लडकी भगा कर लाई गई है। उन्होंने पूछताछ शुरु की। इससे घबराकर वह स्त्री लडकीको छोडकर भीड मेंही कहीं गुम हो गई।

पण्डितजीने उस लडकीको कंधेपर बैठा लिया और उस लडकीसे पता पूछने लगे, पर वह भी मां और बापके सिवाय और कुछ जानती ही नहीं थी। चूमपुचकार कर उसे पण्डितजीने शान्त किया और उसके मां बापकी खोजमें निकल पडे। बहुत घूमने घामनेके बाद उस लडकीके घरका पता मिला। लडकी उन्हें सौंप दी।

ø ø ø

तरुणों में तरुण

१९५३ की घटना, पण्डितजीकी उम्र ८६ वर्षकी। आनन्द (गुजरात) में शामके समय कोई समारंभ था, उसमें भाग लेकर पण्डितजी अपने निवासस्थानकी तरफ जा रहे थे। मार्गमें एक स्थान पर कुछ तरुण कसरत कर रहे थे। पण्डितजीने देखा कि वे तरुण गलत रीतिसे सूर्य-नमस्कारका आसन कर रहे थे। पण्डितजी मोटरसे उतरे और आव देखा न ताव, झट धोती कसकर मैदानमें उतर पडे और शास्त्र शुद्ध नमस्कारके आसन करके दिखाने लगे।

ø ø ø

स्वयं पण्डितजीके मुखसे

☆

भूतबाधा

कोलगांवमें हमारे घरमें काशीबाई नामकी एक स्त्री भूतबाधासे पीडित थी। उसका घर बांदामें था। उसका पति बांदेमें रहता था।

जब उसे आवेश आता था, तो वह बहुत शक्तिका काम करती थी। वह साठ वर्षकी होकर मर गई। मैंने उसका अध्ययन किया, और मेरा मत यह बना कि असन्तोषके कारण उसका मन क्षुब्ध हो जाता था, इसीको लोग भूतबाधा कहते थे।

ø ø ø

बिच्छुका मंत्र

दक्षिण हैदराबादमें डॉ. गंगाधरपंत किर्लोस्करके घरमें एक नौकर था। उसे एक बिच्छुने डंक मार दिया और वह रोता हुआ मेरे पास आया। शामके करीब ७॥ बजे थे। बिच्छुने पीठमें डंक मारा था। मैंने गायत्रीमंत्रका पाठकरके उस डंक मारी हुई जगह पर बहुत जोरसे एक थप्पड मारा।

थप्पड मारते ही वह रोनेवाला नौकर हंसता हुआ चला गया।

ø ø ø

अजंताके जंगलमें भूत

हम सात आठ जन अजन्ताकी गुफा देखनेके लिए गए हुए थे। उस समय एक ऊंचे स्थानपर रहनेके लिए हमारी व्यवस्था की गई थी। रातके समय सामनेके पर्वतपर बीस पच्चीस मिनटमें छोटीबडी ज्वालायें दिखाई देने लगीं। वहांके नौकरोंने कहा कि वह भूतचेष्टा है। वह ज्वाला कभी तीन चार फुट ऊंची दिखाई देती थी, तो कभी पन्द्रह बीस फुट ऊंची।

हममेंसे दोतीन मनुष्य मेरे साथ उस पर्वततक चलनेके लिए तैय्यार हो गए। बारह तेरह मील चलकर हम वहां जा पहुंचे। तब ज्ञात हुआ कि कपास दबानेके लिए वहां भाप

की एक मशीन रातदिन चलती रहती थी। वह हर बीस पच्चीस मिनटके बाद जला हुआ कोयला बाहर फेंकती थी, उसीकी वह ज्वाला दिखाई देती थी।

ø ø ø

एक और भूत

हैदराबादमें गौलीगुडामें एक तेलंग ब्राह्मणके घर भूत दिखाई देता था। उस घरमें एक डेढसौ फुट लम्बी गली सी थी। वहां रातको करीब एक बजे भूत आया। अन्धेरेमें तीनपुरुषकी इतनी ऊंचाई पर एक चेहरा दिखाई दिया। दांत और दांतसे बाहर निकलनेवाली ज्वालाओंका प्रकाश दिखाई दिया। हिः हिः आवाज भी सुनाई दी।

प्रथम दर्शन में मुझे भी डर लगा। मैं मन ही मन गायत्रीका जप करने लग गया। मैंने दो तीन बार कहा कि दिया लाओ। उसके बादसे ही उस भूतका चेहरा नीचे होने लगा और मनुष्य जितनी ऊंचाई पर आते ही वह अदृश्य हो गया।

दूसरे दिन घरमें मैंने मुंहसे जलती हुई अगरबत्ती पकडकर अंधेरेमें खडे होकर हिः हिः किया, तो लोगोंको पिछले दिनके भूत जैसा ही नजर आया। गौळीगुडामें कोई बदमाश ही ऐसा करता होगा।

बादमें खोज करनेपर पता चला कि हैदराबादके उस घरमें दो मेजोंमें वह भूतकी लीला करनेवाला खडा होता था, इसलिए उसका मुंह तीन पुरुषकी जितनी ऊंचाई पर दिखाई देता था।

ø ø ø

जीवनभरमें एक ही प्याला चायका

जीवन भरमें मैंने सिर्फ एक ही बार चाय पी थी। वह भी कोल्हापुर महाराजके खातिर। उन दिनों मैं कोल्हापुरके कैदखानेमें था। इस कैदीसे मिलनेकी महाराजकी इच्छा हो गई। मेरे पास सन्देश आया कि महाराज तुमसे मिलना चाहते हैं। मैं कैदीके वेशमें। महाराज मुझसे मिले। बहुत देरतक बातचीत हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि कोई अच्छा सा वकील मुकर्रिर करके मुकदमा लडो और यह कहकर उन्होंने चायका प्याला मेरे आगे कर दिया।

मैं था कैदी। मेरे आगे महाराज हाथमें प्याला लेकर स्वयं आग्रह कर रहे थे। बस, उसी समय मैंने चाय पी। जीवन भरमें सिर्फ एक बार। राजशाहीमें राजहठको भी बालहठके समान ही पूरा करना पडता था।

ø ø ø

रेलगाडीमें बिच्छू

मैं लाहौरसे दिल्ली जा रहा था। तीसरे दर्जेका प्रवास। भयंकर भीड। ऊपरके बर्थ पर रखी हुई गठरीमेंसे एक छोटा सा बिच्छु गिरा। वह भी नीचे बैठे हुए एक यात्रीके पैर पर। गिरते ही उसने डंक मारा। थोडी सी देरमें ही उसका विष चढने लग गया और चढते चढते वह जांघ तक पहुंच गया। वह यात्री तडपने लगा।

मैंने उसे खडा किया और मनमें गायत्री मंत्रका जप करते हुए कहा कि पैर झटकारो। २०-२२ बार पैर झटकारते ही बिच्छुका विष उतर गया। इसका प्रभाव लोगों पर पडा और मुझे बैठनेके लिए जगह मिल गई।

ø ø ø

परमेश्वरकी कृपा

३१ मई सन् १८९५ का दिन। सावंतवाडीसे ४००० रु. के सिक्के बम्बई ले जाने थे। श्री... पर एक अधिकारीने झूठा आरोप लगाकर उसे कस्टम ऑफीसमें कामसे निकाल दिया; इस विषयमें कचहरीमें मुकदमा चल रहा था। श्री... की तरफसे श्री फिरोजशाह मेहता पैरवी कर रहे थे। रोजकी फीस उनकी १२०० रु. थी। इसलिए समय पर उस रकमका पहुंचना आवश्यक था। इसलिए अन्तके जहाजसे जाना अनिवार्य था।

सावंतवाडीसे मैं और डॉ. पुरोहित दोनों ट्रंकोंमें रु. भरकर निकले। सावंतवाडीमें गोविन्द पै नामका एक साहुकार था। उसके पास सिक्के ही रहते थे। उसकी शक्ति इतनी थी, कि दस बीस हजार रु. तो वह एक ही समयमें कर्ज दे सकता था। उसके पास नोट नहीं थे। इसकारण उससे चार हजार रु. के सिक्के ही लेने पडे। दो दो

हजार रु. एक ट्रंकमें इसप्रकार दो ट्रंकोंमें उन सिक्कोंको भरा गया।

जब रु. हम गिनने लगे तो सेठजीने कहा– "रु. इस प्रकार आवाजके साथ नहीं गिने जाते। यदि कोई इनकी आवाज सुन लेगा तो रातमें डाका भी डाल सकता है। इसलिए दस बीस रु. हाथमें रखकर आवाज न करते हुए गिनने चाहिए। सेठजीने इसप्रकार सब रुपये आवाज न करते हुए गिनकर हमारी थैलियोंमें भर दिए और हम रवाना हो गए।

यह कर्ज श्री बलवन्तराव लुकतुकेने अपनी जमीन गिरवी रखकर लिया था। हमारी जिम्मेदारी इसे बम्बई तक पहुंचानेकी ही थी।

हम दोनों बैलगाडीसे रातको १२ बजे वेंगुर्ला बन्दरगाह पर पहुंचे। डाकेके डरसे हम रातभर जागते रहे। रातको १२ बजे हम बन्दरगाह पर उतरे। खलासियोंने सूचना दी कि स्टीमर आनेमें अभी दो तीन घण्टेकी देर है। तो भी तुम्हें अभीसे नावमें बैठ जाना चाहिए, क्योंकि नावको स्टीमरतक पहुंचनेमें २ घण्टे तो लग ही जायेंगे।" साधारण दिनोंमें यह दस मिनटमें पहुंच जाता था।

उसके कथनानुसार हम नावमें बैठ गए। हम सब करीब ४० जन थे। स्टीमरका पता नहीं था। तो भी दो तीन घण्टे पहले ही हमारी नाव चल पडी। तूफानी हवा चल रही थी। क्षणक्षणमें हमारी नाव नीचे आती और दोनों तरफसे लहरें आकर टकरातीं। दूसरे ही क्षण हमारी नाव लहरोंके सिर पर जाकर बैठ जाती। एक एक लहरकी ऊंचाई १५–२० फुटकी तो रही ही होगी। उफनते हुए समुद्रको देखनेकी यह हमारी पहिली ही बारी थी।

हमारी नाव तीन बजे स्टीमरसे जाकर लग गई। पर स्टीमरमें चढना संभव नहीं था। क्योंकि हमारी नाव स्टीमरसे टकराकर २००–३०० फुट दूर चली जाती थी। स्टीमर भी बहुत हिल रहा था। १५ मिनटतक तो खलासियोंने यह स्थिति देखी, फिर चार खलासियोंने रस्सियां स्टीमरसे बांध दीं और लहरोंके अनुसार उन रस्सियोंको ढीली करते और खींचते और इसप्रकार नावकी स्थिति संभालते थे। नावके अन्दर खडे होकर चार चार खलासी एक एक यात्रीको उठाकर ऊपर उछाल देते और स्टीमरके अन्दर खडे हुए खलासी उसे लपक लेते, इसप्रकार सभी यात्री स्टीमरमें पहुंचा दिए गए। पर अभीतक हमारे रु. वाले ट्रंकोंके साथ सब सामान नावमें ही था, और हमें भी बम्बई पहुंचना आवश्यक था।

इस समय स्टीमरमें खडा होना भी हमारे लिए अशक्य सा हो रहा था। स्टीमर भी इतना हिल रहा था कि बीच बीचमें दोनों तरफसे लहरोंके कारण पानी भी स्टीमरमें आकर गिरता था। इस स्थितिमें भी हमारी दृष्टि ट्रंकोंपर ही लगी हुई थी। अन्तमें उन कुशल खलासियोंने वे ट्रंक हमारे पास पहुंचा दिए। पर इस तूफानके कारण निश्चित समयसे १२ घण्टे देरसे हमारा स्टीमर बम्बई पहुंचा और हम भी सब धनके साथ सुरक्षित रूपसे पहुंच गए। यह परमेश्वरकी कृपा ही थी, इसमें हमारा कोई पुरुषार्थ नहीं था।

o o o

कप्तानका अत्याचार

सन् १८९७ में मैं गोवासे बम्बई जानेके लिए चल पडा। मुरगांवमें आकर मैं स्टीमरमें बैठ गया। मैं सर्वप्रथम स्टीमरमें चढा। दूसरे यात्री तबतक नहीं आये थे, इसलिए मुझे स्टीमरमें अच्छी जगह मिल गई। टिकिट सेकेण्डक्लास का था। उन दिनों बम्बईतकका भाडा १॥ रु. था। मैं अपना बिस्तरा बिछाकर लेट गया। स्टीमर रातको १२ बजे वहांसे चलकर मालवण तक आई। मालवणमें जहाजके कैप्टनकी एक वेश्या स्टीमरमें चढनेवाली थी।

उन दिनों हाजी कासिमकी स्टीमरें चला करती थीं। इसलिए कैप्टन भी मुसलमान ही होता था। मालवणमें वह वेश्या चढी। उसके लिए सर्वोत्तम जगहकी खोज शुरु हुई। सबसे अच्छी जगह पर तो मैं सो रहा था।

कैप्टनने आदेश दिया कि मेरे लिए दूसरी जगहकी व्यवस्था करके मेरी जगह उस वेश्याको दे दी जाए। उसके अनुसार टिकिट कलक्टर मेरे पास आकर सभ्यतासे बोला "आप यहांसे उठकर दूसरी जगह जाकर बैठें, यह जगह स्त्रियोंके लिए सुरक्षित है।" मैंने कहा– "मैं इसीजगह ३–४ घण्टेसे यात्रा करता चला आया हूँ, इसलिए मैं यहांसे नहीं उठूंगा।"

यह सुनकर वह गया और कैप्टनसे उसने सारा हाल कह सुनाया। १०–५ मिनटमें वह फिर आकर मुझसे उसीप्रकार

बोला और मैंने भी वैसा ही उत्तर दिया। तब वह नाराजगीसे बोला– " हम तुम्हें उठाकर दूसरी जगह धर देंगे। "

मैंने भी कहा– " धर दो। "

स्टीमरके सभी यात्री हमारी बातचीत सुन रहे थे। पर कोई भी मेरा पक्ष लेनेके लिए आगे नहीं आया। मैं अपने बिस्तरे पर लेटा हुआ था कि इतनेमें ही छै खलासी आए। उनमेंसे चारने मुझे दरी सहित उठा लिया और दो ने मेरा ट्रंक और सामान उठा लिए। बिस्तरेपर मैं लेटा ही रहा। इस प्रकार यह जुलूस स्टीमरमें चल पडा। सब यात्री देख रहे थे। मुझे क्रोध भी आया और आश्चर्य भी हुआ। पर छै खलासियोंसे झगडनेमें मैं समर्थ नहीं था। उन्होंने एक जगह जाकर मुझे रख दिया और मेरी जगह उस वेश्याको दे दी।

इसके विरुद्ध मैं रिपोर्ट देना चाहता था। पर मेरे बात की साक्षी देनेके लिए भी कोई तैय्यार नहीं था, मैंने कईयोंसे कैप्टनका और टिकिटकलक्टरका नाम पूछा, पर किसीने मुझे उसका नाम नहीं बताया। इसके विपरीत वे सब यही कहते थे कि " शान्त रहो "।

० ० ०

दिल्ली स्टेशन पर

सन् १९१६ के अक्टूबरमें मैं बम्बईसे लाहौरके लिए जा रहा था। लाहौर जानेके लिए मुझे दिल्लीमें गाडी बदलनी थी। मैं दिल्ली स्टेशनपर उतरा और कुलीके द्वारा बताये गए एक इण्टर क्लासके डिब्बेमें बैठ गया। यही डिब्बा दूसरी गाडीमें जुडकर लाहौर जानेवाला था। मुझसे भी पहले ३०-४० यात्री इस डिब्बेमें आकर बैठ गए थे। इस कारण मुझे दरवाजेके पासही बैठना पडा। १-२ घण्टे के बाद पेशावर जानेवाली गाडी आई और हमारा डिब्बा उसमें जुड गया।

इतनेमें दो बो अंग्रेज दम्पति इण्टर क्लाससे यात्रा करना चाहते थे। स्टेशनमास्टरको उनके लिए इण्टरक्लासमें जगह देना जरूरी था। क्योंकि उस गाडीमें इण्टरका दूसरा डिब्बा नहीं था। इसलिए स्टेशन मास्टरने निश्चय किया कि एक थर्ड क्लासका आधा डिब्बा खाली करवा कर उस में इण्टर क्लासकी ये भेडें भर दी जाएं यह डिब्बा उन चार अंग्रेजोंके लिए खाली कर दिया जाय।

उसकी आज्ञाके अनुसार टिकिट कलक्टर आया और यात्रियोंसे बोला– " यह डिब्बा अंग्रेज यात्रियोंके लिए सुरक्षित है, इसलिए तुम सब उतरकर पासके डिब्बेमें जाकर बैठो। "

मेरे डिब्बेमें मारवाडी और युक्तप्रान्तके स्त्रीपुरुष ज्यादा थे। युक्तप्रान्तके २-३ प्रोफेसर भी उनमें थे। उपर्युक्त आज्ञाके सुनते ही प्रथम मारवाडी जानेके लिए तैय्यार हो गए। मैंने उनसे कहा कि तुम सब यहीं बैठे रहो। जो कुछ कहना सुनना होगा मैं स्टेशनमास्टरसे कह सुन लूंगा। पर मारवाडियोंमें साहस नहीं हुआ। इतनेमें स्टेशनमास्टर आया और उसने सबसे एकदम उतर जानेसे लिए कहा। उस समय स्टेशनके अधिकांश कर्मचारी अंग्रेज ही थे। स्टेशन मास्टरके कहते ही मारवाडी अपने स्त्री बच्चोंके साथ डिब्बे मेंसे उतर गए और पासके थर्ड क्लासके डिब्बेमें जाकर बैठ गए। इस डिब्बे पर खडियेसे इण्टर लिख दिया था, पर था थर्डक्लासका डिब्बा। मारवाडियोंके उतर जानेसे आधा डिब्बा खाली हो गया और उसके अनुसार मेरा पक्षबल भी कम हो गया।

इतना सब होने पर भी १०-१५ यात्री बैठे ही रहे। तब मैंने स्टेशन मास्टरसे कहा– " अब जगह हो गई है। अंग्रेज यात्री आकर बैठ सकते हैं। हम एक बर्थ उनके लिए खाली कर देते हैं। " पर मेरा कथन उसे पसन्द नहीं आया। भला अंग्रेज हिन्दुस्तानियोंके साथ कैसे बैठ सकते थे?

अब तक दर्शकोंकी भीड हमारे डिब्बेके पास इकट्ठी होने लग गई थी। गाडी छूटनेमें देरी हो रही थी और स्टेशनमास्टर और उनके सहकारियोंका बोलनेका जोर बढता रहा था।

इतनेमें ही एक योरोपियन मिलिटरी अधिकारी आया और उसने कहा कि तुम्हें उतरना ही पडेगा। आरामसे खुद उतर जाओ तो अच्छा है, नहीं तो जबर्दस्ती उतरना पडेगा। उसके इस सैनिकी आविर्भावको देखकर रहे सहे यात्री भी उतर कर दूसरे डिब्बोंमें चले गए। रह गया मैं अकेला ही। उस सैनिक अधिकारीने आकर कहा– " तुम डिब्बा खाली करो। "

मैंने कहा– " मुझे और मेरे सामानको उठाकर जहां रखना हो, रख दो। मैं स्वयं यहां से नहीं हिलूंगा। "

उसने तीन बार मुझसे कहा और मैंने भी तीनोंबार यही

उत्तर दिया। इस पर स्टेशनमास्टर आकर बोला– "तुम डिब्बेमें पहले ही आकर बैठ गए। प्लेटफार्म पर आनेके पहले ही डिब्बेमें आकर बैठना अपराध है। मैं तुमपर दावा करूंगा।" उसके ऐसा कहते हो मैंने अपना नाम और पते का कार्ड उसके आगे कर दिया और कहा– "तुम जरूर दावा करो मुझे जो कुछ कहना होगा, कोर्टमें कहूंगा। अब डिब्बा खाली हो गया है। तुम्हारे अंग्रेज यात्री यहां बैठ सकते हैं। चार अंग्रेजोंके लिए ४० यात्रियोंके डिब्बेको खाली करानेका तुम्हें अधिकार है या नहीं, इसका निर्णय मैं अदालतमें करा लूंगा। मुझ पर मुकदमा जरूर चलाओ।"

इस पर उन स्टेशनके अधिकारियोंने दूर जाकर क्या सलाह किया कौन जाने। उन्होंने इस डिब्बेको निकाल कर दूसरा डिब्बा जोडनेका निश्चय किया। तदनुसार उन्होंने रिकॉर्डमेंसे डिब्बेका नम्बर निकाल डाला। जब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे सहित ही यह डिब्बा और कहीं ले जाया जायगा, तो मैं सामानसहित उतर कर पासके डिब्बेमें जाकर बैठ गया। यह मेरा आग्रह देखकर दर्शक भी आश्चर्यचकित हो गए।

इस कारण गाडी एक घण्टे देरसे छूटी। दूसरे डिब्बेमें जानें पर वहांके लोगोंने मुझसे पूछा– "आप कहांके हैं?"

मैंने कहा– "पूनाका हूं।"

वे बोले– "तभी तो आपने इतना झगडा किया।"

गीता पुरुषार्थ–बोधिनी

[लेखक— श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर]

'मैंने श्री पं. सातवलेकरजी की लिखी हुई श्रीमद्भगवद्गीता पर 'पुरुषार्थ–बोधिनी' टीका पढी और मैं उससे अत्यन्त प्रभावित हुआ। यह टीका पढकर मैं समझ सका कि गीता केवल आध्यात्मग्रंथ ही नहीं है, अपितु वह इस लोकको बनानेवाला ग्रंथ भी है। वह संसार छोडकर और वीतराग बनकर जंगलमें जानेका उपदेश नहीं देती, अपितु संसारमें ही रहकर पग–पग पर आनेवाले संकटोंसे किस प्रकार टक्कर ली जाए, इसका मार्ग बताती है। मेरी यह निश्चित धारणा है कि यह प्रत्येक संस्था व कालेजोंके द्वारा एक संग्रह करने योग्य ग्रंथ है।'

—महात्मागांधी

'यह गीता पर एक अनोखी टीका है, जिसने गीताके एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर, जो आजतक विद्वानोंकी दृष्टिसे ओझल था, भरपूर प्रकाश डाला है। मुझे यह पढकर अत्यन्त आनन्द हुआ। मुझे आशा है कि पाठक इसे हृदयसे अपनायेंगे।'

—चिं. द्वा. देशमुख, उपकुलपति– दिल्ली विश्वविद्यालय

यह टीका अपने ढंगकी एक ही है। जिस किसीने भी इसे पढा, मुक्तकण्ठसे इसे सराहा। सभी उच्च कोटीके विद्वानोंने इसकी बडी प्रशंसा की। इसकी मांग अत्यधिक है, अतः पाठकोंके आग्रह पर हमें इसकी चौथी आवृत्ति निकालनी पडी। यह ग्रंथ हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी तीन भाषाओंमें मिल सकती है, आप भी शीघ्रता कीजिए।

शिक्षण–संस्थाओं तथा अन्य संस्थाओंको तथा व्यापारियोंको भी उचित कमीशन पर ये पुस्तकें मिल सकेंगी।

पृष्ठ संख्या ८५०] [मूल्य ३०) रुपये (डा. व्य. पृथक्)

पुस्तक तथा विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखें—

व्यवस्थापक– स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट–'स्वाध्याय मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. बलसाड] (गुजरात)

अगले सूत्रमें स्वास्थ्यधर्म रक्षान्तर्गत मनपरक आठवां साधन बताते हैं।

मितभाषणम् ॥ ९ ॥

जितनी आवश्यकता है उतना ही बोलें, ज्यादा नहीं, हदसे ज्यादा बोलनेसे भी आत्मा और मनकी शक्ति कम हो जाती है। क्योंकि, श्रोतागण ऊब जाते हैं इसलिए बोलनेवाले व्यक्तिमें दीनता (Inferiority cmplex) आ जाती है। पिछले ज्ञानाधिकारमें वातदोष प्रकरणमें बतलाया है कि, आत्माका बोलीके साथ या सम्बन्ध है बेकार बोलनेसे गप्प उडानेसे व्यर्थवाद विवाद करनेसे वितण्डावादादिसे आत्मा मन और प्राणकी शक्तियां व्यर्थ हो जाती हैं। इसलिये मितभाषी हों। आजकल इसकी भी बडी आवश्यकता है। क्योंकि चारों ओर हम देखते हैं बकवाद ही बकवाद चल रहा है जिससे उनकी आत्मा आदिकी शक्ति कम होकर रोगप्रवणता बढ रही है।

अगले सोपानमें स्वास्थ्यधर्मरक्षान्तर्गत प्राण विषयक साधन बतलायेंगे।

इति स्वास्थ्यधर्म-रक्षाधिकारे
द्वितीयं सोपानम्-मनोरक्षानिरूपणात्मकम् ॥

स्वास्थ्यधर्म-रक्षाधिकारमें
मनोरक्षा निरूपणात्मक-दूसरा सोपान समाप्त हुआ ॥

स्वास्थ्यधर्म-रक्षाधिकारे

तृतीयं सोपानम् ॥

असुनीते मनो अस्मासु धारय
जीवातवे सुप्रतिरा न आयुः।
रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ (ऋग्वेद. १०।५९।५)

मनुष्यको चाहिये कि, इस मंत्रमें वर्णित आयुष्य बढानेकी रीति और नीतिको अपनाये। इस विषयका पक्का संकल्प कर ले कि, प्राणायामादिसे मैं अवश्य ही निरोगता तथा दीर्घायु प्राप्त करूँगा। और किसी प्रकारसे भी आयुको क्षीण होने नहीं दूंगा। (घृत शब्द आयुका भी वाचक है " आयुर्वै घृतम् शतपथ ब्राह्मण)

अथ प्राणस्य ॥ १ ॥

इस सूत्रमें भी पहले जैसे स्वास्थ्यधर्म रक्षा और अभ्यास इन शब्दोंकी अनुवृत्ति है। स्वास्थ्यधर्म रक्षान्तर्गत प्राणकी रक्षाके बारेमें अब विचार करेंगे। यह भी पूरे अभ्याससे ही सिद्ध होगी।

प्राणकी शक्तिको बढाते समय आत्मा और मन दोनोंको इस ओर लगा देना आवश्यक है। अन्यथा कुछ नहीं होगा। बल्कि नुकसान होनेकी आशंका रहती है। इसीलिये ऊपरके वेदमंत्रमें मनका उपयोग बतलाया है। यह सोपान अत्यन्त मुख्य भाग है। क्योंकि, जो चिकित्साधिकारमें औषधोंका प्रयोग दिखाया जायगा, वह सीधा प्राणशक्ति पर असर करता है। इसके द्वारा ही ऊपरकी ओर मन और आत्मा पर, नीचेकी ओर शरीर पर प्रभाव पडता है। अथर्ववेदमें प्राणसूक्त नामसे एक पूरा सूक्त ही इसकी शक्ति और उसकी वृद्धिसे क्या लाभ होता है इनका वर्णन करता है। परन्तु इसके ज्ञानमात्रसे कुछ नहीं बनेगा। ऊपर वेदमंत्रमें बताये अनुसार दृढ संकल्प चाहिये पश्चात् उस संकल्पके अनुसार अभ्यास करना चाहिये। इसलिये अभ्यासकी अनुवृत्ति बतलायी है। उस प्राणसूक्तमें अन्य बहुत विषय जो हैं उनको छोडकर हमें जितना आवश्यक है उतना ही सारांश रूपसे यहाँ बताते हैं -" सब औषधियोंकी औषधी प्राण ही है। इसके द्वारा ही हमारे शारीरिक और मानसिक दोष, दूर किये जा सकते हैं। इसको हमारे अनुकूल बना लेने पर किसी औषधकी जरूरत नहीं पडती, और मनुष्य पूर्णारोग्य स्थितिमें रहता है।

हम इस विषय पर जितना विश्वास करके प्राणशक्तिको बढानेका प्रयत्न करेंगे उतनी ही भलाई होगी। यह एक गम्भीर विषय है जिसके बारेमें एक बडी पुस्तक लिख सकते हैं। पर यहाँ हमारा उद्देश्य इतना ही है कि सारांश रूपसे इस विषयका महत्त्व बताकर लोगोंमें दिलचस्पी पैदा करना और इस ओर प्रयत्नशील बनाना।

अगले सूत्रमें प्राणशक्तिको बढानेके साधन बतायेंगे।

आयामः ॥ २ ॥

प्राणायाम या प्राणका आयाम एक ऐसा साधन है जिसके विचारमें जितना कहा जाय वह थोडा ही है। प्राणायामसे बडा अद्भुत काम होते देखा है।

प्राणका आयाम क्या है ? " प्राणः (प्राणवायुः) आयम्यते संयम्यते येन सः प्राणायामः " जिससे प्राण-

वायु (Vital Force) आत्मा और मनको काबूमें रखा जाता है वह प्राणायाम है। सारे संसारमें ऐसी कोई प्रणाली नहीं है, जो इसके समान हो। यह सारे संसारके लिये हमारी भारतीय संस्कृतिके ऋषिमुनियोंकी देन है। मनुने कहा है–

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात्– इस प्राणशक्तिके निग्रह या संयमसे या वशमें रखनेसे सब इन्द्रियोंके (ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय और मन इनके) दोष निकल जाते हैं। और शुद्ध बनते हैं जैसे अग्निमें डाले हुये धातुओंके दोष निकलकर धातु शुद्ध बन जाते हैं। और यह प्राणसंयम कैसे सिद्ध होता है इस विषयमें पतञ्जलिमुनिने कहा है– "प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य" + अर्थात् रेचक, पूरक, कुम्भक, (बाह्य तथा आभ्यन्तरिक) इन तीनोंसे प्राणशक्तिको अपने वशमें कर सकते हैं। यहाँ इसका विवरण पूरा नहीं दे सकते, क्योंकि यह भी भारी विषय है। यहाँ प्राणायामसे क्या लाभ होते हैं उन्हें संक्षेपसे कहते हैं।

(१) प्राणशक्तिका ब्रह्माण्डके वायुसे नित्य संसर्ग बढकर उसकी शक्ति हमारे शरीरके अन्दर भी आती है। (२) आयु बढती है। तेजोयुक्त चेहरा होता है। (३) चक्षु आदि इन्द्रियोंकी शक्ति बढती है। (४) काम करनेकी शक्ति बढती है। (५) संसारके झंझटोंसे मन चञ्चल नहीं होता, संसारमें आनन्द मिलता है क्योंकि सदा निरोगता रहती है। (६) पिछले सोपानोंमें आत्मा और मनकी रक्षासे सम्बधित जितने साधन बताये हैं उनके अभ्यासके लिये बडा सहारा मिलकर आसानीसे उनका अभ्यास कर सकते हैं। (७) इनके अलावा अन्य अनेक आध्यात्मिक लाभ होते हैं।

यहाँ एक प्रश्न अवश्य उठता है कि, आयुर्वेदके च्यवन-प्राश आदि अवलेह मिलते हैं जिसकी स्तुति खूब खूब की जाती है कि, इस च्यवनप्राशको खाकर बूढे च्यवन ऋषि युवा बन गये इत्यादि। इसको खानेसे ही सब लाभ जब हो जाय तो इस प्राणायामके झंझटमें पडकर क्यों कष्ट उठायें? इसके उत्तरमें कहना है कि यह दुःखकी बात है कि, असली च्यवनप्राश क्या चीज है यह बहुत लोगोंने समझा ही नहीं। जिस किसीने समझा उसने उस ज्ञानका प्रचार नहीं किया। असली च्यवनप्राश क्या है बताते हैं।

ऋग्वेदके दसवें मण्डलके ३९ वें सूक्तके तीसरे मंत्रके उत्तरार्ध और चौथे मंत्रके पूर्वार्धसे इस च्यवनप्राशका उपदेश मिलता है। मंत्रभाग इसप्रकार है– देवता (Subject) अश्विनौ—

अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्
युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित्॥
युवं च्यवानं सनयं यथा रथं
पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः।

इस मंत्रके आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थोंमें, जैसे इस मंत्रमें आलंकारिक रूपमें शाश्वत घटनाका वर्णन है, वैसे यह कथा कही है कि, जो बूढा जीर्णशीर्ण शरीरवाला च्यवनऋषि था उसको अश्विनौ देवताओंने, जो दिव्य वैद्य हैं, युवावस्था प्रदान की। और महाभारतमें भी यही कथा "सुकन्याचरितम्" इस नामसे आलंकारिक रूपमें आती है। यहाँ विचारणीय बात है कि, यह अश्विनौ कौन हैं? मंत्रमें बताया है नासत्यौ अर्थात् नासिकामें रहनेवाली दो शक्तियाँ। इन्हीं दो शक्तियोंको अन्यत्र "नस्योर्मे प्राणोऽस्तु" इस मंत्रसे नासिकामें रहनेवाला प्राण बताया है। यह शब्द अश्विनौ द्विवचनमें है। इससे प्राण और अपान दोनोंका अर्थ होता है। हमने ज्ञानाधिकारके प्राण विषयक सोपानमें सप्रमाण बताया है कि, ये दोनों नासिकाके द्वारा काम करते हैं। च्यवन कौन है? च्यवन शब्द "च्यु" धातुसे (जिसका अर्थ है धीरे चूना) ल्युट् प्रत्यय लगानेसे बनता है। इससे इस शब्दका अर्थ है कि, जिसकी शक्ति वीर्य आदि चूकर क्षीण होगई है। वह बूढा कृश और रोगी सा है। बुढापेमें अन्धापन भी आजाता है यह क्षीण शक्तिवाला (Carabolic State) मनुष्य प्राणापानादि वायुकी सहायतासे अर्थात् प्राणायामसे फिर युवा बनता है। इस शाश्वत घटनाका वेदमें आलंकारिक रूपमें वर्णन किया गया है। इस कथामें प्राणायामका महत्त्व अच्छी तरहसे बताया गया है। इसको

+ इस विषयका सरल और निरपाय उपाय महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीने अपने सत्यार्थप्रकाशके तीसरे समुल्लासमें लिखा है। प्राणायामके अभ्यास करनेके इच्छुक इसे अवश्य देखें और सीखें। और इसकी सहायताके लिये निम्नलिखित पुस्तक पढनेसे लाभ होगा। पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीकी प्रश्नोपनिषद् व्याख्या, योगसाधनकी तैयारी, इन्द्रशक्तिका विकास, ब्रह्मचर्य, आसन, संध्योपासना, संध्याका अनुष्ठान आदि।

बिना समझ लोग च्यवनप्राश नामसे अनेक अवलेह खाकर अपने स्वास्थ्यको और बिगाड लेते हैं। इस च्यवनप्राश अवलेहके खानेवाले मनुष्यको कभी भी बूढेसे जवान होते हमने नहीं देखा न और किसीने भी देखा होगा। हाँ कभी कुछ कुछ खांसी आदि आराम तो होजाता है। परन्तु इससे उपर्युक्त शाश्वत लाभ होते कभी नहीं देखा। खैर। इस सन्दर्भमें एक और दिलचस्प विषय बतलाते हैं। प्राणायाम और आसन दोनों मिलकर वाजपेय यज्ञ कहलाते हैं। आजकल वाजपेयी नामको बहुत सज्जनोंने धारण किया है। परन्तु यह सन्देहका विषय है कि, इस नामका पूरा पूरा अर्थ वे जानते हैं या नहीं। उनके वंशज किसी महानुभावने इस विद्याका अभ्यास किया होगा, बस उसका नाम आगया है। यह बहुत महत्त्वका शब्द है "वाज" कहते हैं वीर्यको (वीर्यं वै वाजः। शतपथ ब्रा० ३–३–४–७) इसको अन्दर ही अन्दर पचा लेनेका नाम वाजपान है। शीर्षासनके साथ प्राणायाम करनेसे यह वाजपान विशेष रूपसे सिद्ध होता है। मनुष्यका वीर्य पृष्ठवंश (Spinal column) में रहनेवाली सुषुम्ना नाडी द्वारा बहते हुये मस्तकमें जाकर ओजोरूप जल बनकर देहमें स्फूर्ति, दिमागमें ताकत, आत्मा और मनके तेज आदिको बढाता है। इस यज्ञ या विद्याको जो जानता है वह हमेशा नीरोगावस्थामें रहेगा। बुढापा उसके पासतक आ भी नहीं सकता। यह विद्या हमारे भारतीय संस्कृतिकी अद्भुत विद्या है।

यहाँ पर एक बात बतानी चाहिये जो हमारे अनुभवमें आयी है वह यह है कि, जो कुछ हम भारतीय संस्कृतिकी विद्यायें बतायें, उसे अक्सर लोग कह उठते हैं कि यह साम्प्रदायिक है न कि, वैज्ञानिक। परन्तु वे लोग विज्ञानके अर्थकी ओर ध्यान नहीं दिया करते। विज्ञानको Science कहते हैं, और यह Science शब्द 'Scio' to know इस मूलसे बना है तो Science का अर्थ Knowledge हुआ। विज्ञानका अर्थ भी विशेष ज्ञान या Knowledge होता है। विद्यायें विशेष ज्ञानके सिवाय और क्या बताती हैं। अतः भारतीय संस्कृतिकी विद्यायें (या चौंसठ कलायें) पूर्ण विज्ञान ही हैं। वे सारे संसारके उपयोगार्थ हैं। साम्प्रदायिक नहीं।

प्राणायामसे आयु कैसे बढती है इस विषयमें संक्षेपसे कुछ कहना अप्रासंगिक नहीं होगा। सृष्टिमें देखा जाता है कि, जो जो प्राणी जल्दी श्वास प्रश्वास करते हैं उनकी आयु बहुत कम होती है। जैसे कुत्ता, वह बहुत ही जल्दी जल्दी श्वास प्रश्वास करता है उसकी आयु १०–१२ वर्षतक है। हाथी व सांप तो बहुत ही धीरे धीरे श्वास प्रश्वास करते हैं उनकी आयु लगभग सौ वर्षतक होती है। हाँ– यह और बात है कि, दुर्घटनासे मनुष्यके हाथों मार खानेसे मर जाते हैं। इन प्राणियोंमें आयु बढानेके लिए प्रयत्न करनेकी शक्ति तो है ही नहीं। जो कुछ परमात्माने दिया है उसे भोग लेते हैं। परन्तु मनुष्य ऐसा नहीं है मनुष्य तो अपने प्रयत्नसे सांसकी संख्याको कम जरूर कर सकता है। जैसी उसकी संख्या प्राणायामके जरिये कम होती जायगी उतनी उतनी आयु बढेगी। जितने जितने सांसका अधिक खर्च होगा दुर्व्यसन कोप ताप द्वेष आदि भावनाओंसे उतनी ही उसकी आयु कम होती जायेगी। हमें याद है कि, हमारे बचपनमें हमारे बुजुर्ग कहा करते थे झूठ मत बोलो। झूठसे आयु कम हो जायेगी। इसका रहस्य सांसकी वृद्धि होनेमें है।

अगले सूत्रमें इस प्राणायामकी एक और अद्भुत शक्ति जो है उसे बतलायेंगे।

वाञ्छिताङ्गस्थापनम् ॥ ३ ॥

इस सूत्रमें पहले सूत्रसे "प्राणस्य" इसकी अनुवृत्ति आती है। इस प्राणायामको करते करते मनुष्यके अन्दर एक तरहकी शक्ति उत्पन्न होती है। जिससे कि, संकल्पके द्वारा प्राणको जिस स्थानपर रोकनेकी इच्छा हो उस स्थानपर रोककर वहाँके रोगको दूर कर सकते हैं। पिछले शारीरिक प्रकरणमें कहा है कि, शरीरमें आठ चक्र या शक्तिके केन्द्र हैं। प्राणशक्तिको ऊपर कहे अनुसार इन आठों शक्तिके केन्द्रमें स्थापित करके पूर्ण निरोगता प्राप्त कर सकते हैं। जब कभी किसी अंगमें रोग होजाय, जैसे कण्ठ, या फेफडे इत्यादि तब प्राणको छातीमें रहनेवाले विशुद्ध चक्रमें या अन्य चक्रोंमें स्थापित करके सारे रोगोंको हटा सकते हैं। यह अभ्याससे अवश्य सिद्ध हो सकता है।

अगले सोपानमें स्वास्थ्यधर्म रक्षान्तर्गत शारीरिक साधन बतायेंगे।

इति स्वास्थ्यधर्म-रक्षाधिकारे
तृतीयं सोपानम्–प्राणरक्षात्मकम् ॥

यह स्वास्थ्यधर्म रक्षाधिकारमें
प्राणरक्षात्मक तृतीय सोपान समाप्त हुआ ॥

×

स्वास्थ्यधर्म-रक्षाधिकारः-

चतुर्थ-सोपानम् ॥

उद्यानं ते पुरुष नाऽवयानं
जीवातुं ते दक्षतातिं करोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ अथर्व. ८।१।६ ॥

हे मनुष्य, तेरी गति हमेशा उन्नति करनेवाली ही हो, कभी भी अवनति नहीं। इसलिये जो दीर्घायुष्य चाहिये उसके लिये मैं बलका विस्तार करता हूँ। इस सुखमय शरीर रूपी अमृतमय रथ पर चढो। दीर्घायु प्राप्त करो। तब इस संसाररूपी रणरङ्गमें विजय होगी।

अथ शरीरस्य ॥ १ ॥

इस सूत्रमें भी स्वास्थ्यधर्म रक्षा, अभ्यास, इन शब्दोंकी अनुवृत्ति आती है। अब स्वास्थ्य धर्मान्तर्गत रक्षाधिकारमें शरीरकी रक्षाके विषयमें कहेंगे। यह भी पूरे अभ्याससे ही सिद्ध होगा। पिछले ज्ञानाधिकारमें इस शरीरका जीवात्माके एक दिव्य नगरीके रूपमें वर्णन किया। और उसका आशय भी बताया। यहाँ एक और अलंकारके प्रयोग द्वारा शरीरकी रक्षाके लिये अमूल्य उपदेश मिलता है। ऊपर अथर्ववेदका मंत्र शरीरके विषयमें एक रथकी उपमा देता है। इसी तरह यजुर्वेदमें भी है। इस आधार पर उपनिषदोंमें, भगवद्गीतामें खूब इसकी चर्चा की है उसका थोडासा विवरण हमारे उद्देश्यके लिये बहुत उपयोगी होगा। इसीलिये संक्षेपसे लिख रहे हैं।

आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु,
बुद्धिं तु सारथिं विद्धिः मनः प्रग्रहमेव च ।
इन्द्रियाणि हयान्याहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्,
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।

अर्थात्- यह शरीर रथ है इसका मालिक आत्मा है, बुद्धि (मनका विवेकरूपी भाग) सारथि (Driver) है। मन (संकल्प विकल्पका भाग) लगाम है, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय घोडे हैं। इनके विषय "शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये इन घोडोंके चरनेकी भूमि है। इनको आत्मा बुद्धिके द्वारा अच्छी भूमि पर ले जायेगा तो सुखका अनुभव करेगा। बुरी भूमिमें लगाये तो दुःख भोगेगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि, इस शरीरके आरोग्यके लिये, दीर्घायुके लिये, और सुखके लिये, आत्मा मन और प्राण, जिनके विषयमें पिछले सोपानमें विवरण कह दिया है इनकी पवित्रता जरूरी है। ऐसे पवित्र आत्मादिके द्वारा ही शरीर की रक्षा होगी। इस स्वास्थ्यधर्म रक्षान्तर्गत शरीरपरक जितने साधन बताये हैं वे स्वतंत्र नहीं। आत्मादिके इस ओर नियोगसे ही सिद्ध होते हैं। अब यह साधन कौनसे हैं देखें

ब्रह्मचर्यम् ॥ १ ॥

यह शब्द "ब्रह्मचर्य" बहुत व्यापक अर्थ देनेवाला है। वेदमें ब्रह्मचर्य सूक्त ही है। परन्तु इतना व्यापक अर्थ यहाँ नहीं लेते। केवल यहाँ वीर्यरक्षणका अर्थ लेते हैं। यह वीर्य रक्षण सब मनुष्योंके लिये अत्यन्तावश्यक है। सारा जीवन सुखमय इसीसे होता हैं। आजकल खास करके विद्यार्थी विद्यार्थिनियाँ इस ओर ध्यान देती ही नहीं। प्रचलित पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे तो वातावरण इतना दूषित हो गया है कि, खास करके विद्यार्थी और विद्यार्थिनियोंके युवावस्थामें सहशिक्षाके कारण इकट्ठे होना, सिनेमा आदिके गन्दे गीत गाना और दृश्योंको देखना, और गृहस्थियोंमें परिवार नियोजनके नामसे वीर्यको नष्ट कर लेना, इत्यादिका वर्णन किया नहीं जा सकता। इसके अलावा पारिवारिक नियोजनका एक भूत सबके सिर पर सवार होकर अनर्थ कर रहा है। एक वैद्य होनेके नाते इसका दुष्परिणाम, अवश्य बताना है।

पहले पहल ब्रह्मचर्यका प्रभाव और वीर्यरक्षणकी शिक्षा विद्यार्थियोंको नहीं दी जाती। दूसरा गृहस्थाश्रममें मनु आदि धर्मशास्त्रकारोंके वचनके अनुसार ब्रह्मचर्य पालनका अभ्यास नहीं रहा। तीसरा स्वार्थ बढ गया। चौथा परमात्मा पर विश्वास हट गया है इसलिये सन्तान रोकनेकी उद्देश्यसे अनर्थकारी प्रणालियोंको अपनाकर उनका स्थायी रूपसे रखनेके लिये किसी न किसी बहानेसे उस अनर्थकारिणी प्रणालीका समर्थन हो रहा है। हमने अपनी वैद्यवृत्तिमें यह अनुभव प्राप्त किया है कि पारिवारिक नियोजनान्तर्गत शल्य चिकित्सा (Operation) की वजहसे पुरुषका कितना वीर्य क्षय होकर स्त्रियोंको कितने रोगोंका अनुभव करना पडता है।

यहाँ इसके कहनेका उद्देश्य यह है कि इस वीर्य रक्षण की ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित करके उसका अभ्यास करना है। परमात्माकी उपासनासे आत्मा और मन पवित्र होता है। तद्द्वारा मनोदार्ढ्य होता है। इसके जरिये इन्द्रिय

कानूमें आते हैं। इस तरहके ब्रह्मचर्यके पालनसे कोई अनर्थ नहीं रहेगा। प्रजा संख्याकी अभिवृद्धिका डर नहीं रहेगा। स्त्रीपुरुषोंका देह सुडौल बना रहेगा, तेजोपूर्ण रहेगा, जीवनमें आनन्द आयेगा।

अगले सूत्रमें स्वास्थ्यधर्म रक्षान्तर्गत शरीरपरक दूसरा साधन बतायेंगे।

तपः ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य शब्दके समान तप शब्द भी बहुत व्यापकता रखता है। भगवद्गीतामें इस तपका शारीरिक और मानसिक भेदसे दो भाग दिखलाये हैं। ऊपर कहे ब्रह्मचर्यको शारीरिक तप, अहिंसा, और सत्य, इनको मानसिक तप बताया है। इसीको तैत्तिरीयोपनिषद्में "ऋतं तपः, सत्यं तपः, श्रुतं तपः, शान्तं तपो दमस्तपः" इत्यादि वाक्यसे तपका वर्णन किया है। इन ऋत् और सत्य शब्दोंका अर्थ पहले बता चुके हैं। श्रुतं स्वाध्यायमें आया है। शान्त्यादिका भी दूसरे शब्दोंसे अर्थ किया है अब यहां शीतोष्ण, शारीरिक, परिश्रम इनको सहन करनेकी शक्तिकी ओर दिग्दर्शन कराना है इसका अभ्यास बचपनसे ही करे तो बहुत आसान होगा। अन्यथा नीरोगतामें पूर्णतया सफलता नहीं मिलेगी।

पूर्वकालमें गुरुकुल शिक्षा प्रणालीमें इसकी ओर ध्यान दिया जाता था, और शरीर वज्रके समान हो जाता था। इसको बतानेका आशय यह है, कि अब भी विद्यार्थियोंके जीवनमें चाहें वे गरीब हों या अमीर हों कष्ट सहिष्णुताका अभ्यास करायें। उनकी आयु सुखमय और दीर्घ होगी। यही सात्विक सुख है।

अगले सूत्रमें इसके सिलसिलेमें अन्य साधन बतायेंगे।

ब्राह्ममुहूर्त्तोत्थानम् ॥ ४ ॥

सुबह चार बजेके समयको ब्राह्ममुहूर्त्त कहते हैं। जो तन्दुरस्ती चाहते हैं उनको अवश्य सुबह चार बजे बिस्तरसे उठ जाना चाहिये। मनुने कहा है कि, ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर कुछ कालतक उस दिनमें क्या क्या करें उन सबका एक पुरोगम बनाकर उसके अनुसार आलस्य छोड कर काम करना चाहिये। और रातको सोते वक्त उस दिनमें किये हुये पुरोगमके अनुसार ठीक काम हुआ या नहीं यह सोचें। नहीं हुआ तो ऐसा संकल्प करें कि, उसको अगले दिन पूरा करें। इस तरह करनेसे आत्मिक शक्ति बढती है। और मानसिक दृढता भी। अंगरेजीमें भी प्रसिद्ध कहावत है—

Early to bed and early to rise
makes a man healthy, wealthy and wise.

अर्थात्– शीघ्र सोना और शीघ्र उठना इन दोनोंसे मनुष्य स्वस्थ भाग्यवान् और बुद्धिमान् होता है।

आजकल इन बातोंका निराकरण बहुत हो रहा है। इससे तन्दरुस्ती ठीक नहीं रहती। बडे सवेरे उठकर प्रातःकालकी स्फूर्तिदायक हवामें व्यायाम प्राणायामादि करनेसे मनुष्य चुस्त रहता है। आत्मादि शक्ति बढती है और शान्त रीतिसे अपने सारे दिनका काम मनुष्य कर सकता है। क्योंकि इसके लिये काफी समय भी मिलता है। कामके लिये पर्याप्त समय न मिलनेके कारण घबडाहट होती है। और मानसिक विकारादि होकर रोगबीज उत्पन्न हो जाता है।

अगले सूत्रमें ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठनेके बाद क्या करें यह बताते हैं।

शौचस्नानादिकम् ॥ ५ ॥

ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठनेके बाद शौच करना, अर्थात् टट्टी वगैरह हो आना, यह आदत बचपनसे ही डालनी चाहिये। नहीं तो बहुत गडबड होनेकी संभावना रहती है। शरीरकी स्थितिपर भी इसका असर पडता है। मनको ऐसा तैयार करें कि उसके प्रभावसे प्रतिदिन सुबह उठते ही टट्टी होजाय। यह असाध्य नहीं। सब मानसिक शक्तिपर निर्भर है। इस तरहके अभ्याससे मनकी शक्ति ऐसी बढती है कि, शरीरके किसी अंगपर उसका शासन आसानीसे हो सकता है।

शौचादि दन्तधावनके पश्चात् स्नान करना। यद्यपि ठण्डेपानीसे स्नान करना लाभदायक है तथापि समयानुसार कभी कभी गर्मपानीसे स्नान करना भी ठीक है। जब शरीर क्लान्त रहता है तब गर्म पानीमें नहाना ठीक है। इस विचारमें तो मनुष्य अपने मनको जैसा तैयार करे वैसा हो जाता है। पर स्नान अवश्य रोज करना चाहिये। स्नान करते समय एक गीले मोटे कपडेसे सारे शरीरको रगडकर स्नान करनेसे साबुनकी जरूरत नहीं पडती। साबुनकी हमारे लिये जरूरत नहीं है। साबुनकी उनके लिए जरूरत है जहां पानीके अभावसे रोज नहीं नहाते। और टट्टीके बाद भी पानी से साफ करनेके बजाय कागजसे पोंछ लेते हैं जिससे उनका

शरीर दुर्गन्धयुक्त होता है। साबुनसे बडा नुकसान होता है। चर्ममें सूखापन पैदा होता है। जिससे चर्मरोगादिके हो जानेका डर रहता है। यह अनुभवकी बात है, कि जो साबुनके इस्तेमालके बिना भी स्नान करते हैं वे किसीतरहके चर्मरोगसे पीडित नहीं रहते। और यह भी देखा गया है कि, जो साबुनका उपयोग करते हैं वे चर्मरोगसे पीडित होते हैं। साबुन और दन्तधावनब्रश (Brush) एक फैशन सा बन गया है। और लोगोंके मनमें यह बात नहीं जमती कि सब फैशन स्वास्थ्यके लिये कितना हानिकारक है। पुराने लोग जो दातुनका उपयोग करते हैं उनके दान्त बुढापेमें भी मजबूत रहते हैं। परन्तु आजकलके ब्रश (Brush) फैशनके अनुयायीके दान्त तो यौवनावस्थामें भी हिलते हैं, गिर जाते हैं। और वे कई दन्त रोगोंसे भी पीडित हैं। असली बात यह है कि आन्तरिक शुद्धि (जैसे हम पहलेसे बताते आये हैं) की सिद्धि होनेसे शरीरमें विष पैदा होता ही नहीं। जो कुछ बाहरके कारणोंसे पैदा होता है वह भी आसानीसे दूर होजाता है। परन्तु यह आन्तरिक शुद्धि सरल जीवनसे ही सिद्ध होती है, न कि बाह्याडम्बर-युक्त फैशन आदिसे—

अब शौचादि स्नानके बाद—

युक्तव्यायामः ॥ ६ ॥

युक्त (उचित) व्यायाम करें। व्यायाम कहते हैं कसरत आदिको जिससे शरीर मजबूत सुडौल और कान्तियुक्त, मन प्रसन्न और चुस्त, आत्मा आनन्दित होजाय। व्यायाम बेहद न करें। यह अनुभवकी बात है कि, बेहद व्यायामसे शरीर क्षीण होकर मनुष्य रोगग्रसित होजाता है। क्योंकि इसका उल्टा प्रभाव मन आदि पर पड जाता है। जिसतरह परिमित भोजन करना आवश्यक है उसी तरह परिमित व्यायाम भी।

व्यायाम किस तरहके होने चाहिये सो अगले सूत्रमें बताते हैं।

श्रेष्ठतमं योगासनम् ॥ ७ ॥

संसारमें जितने विध व्यायाम हैं उनमें योगासन श्रेष्ठतम है। इनमें कोई चौंसठ आसन हैं अपने रुचिके अनुसार रोज केवल पांच-छः आसन द्वारा व्यायाम करना पर्याप्त है। जैसे ताडासन, कोनासन, सर्वाङ्गासन, शीर्षासन, (मुख्य) पद्मासन, सिद्धासन, (वीर्य रक्षाके लिये अतिमुख्य)। मनुष्यके बिल्कुल स्वस्थ रहनेके लिये ये चाहिये। आसनोंके करते समय प्राणायाम करना भी आवश्यक है। और इससे पहले जो अन्तःशुद्धि कही गयी है वह भी सिद्ध होती है। यह अन्तःशुद्धि योगशास्त्रमें यम और नियम नामसे प्रसिद्ध है। यम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरीका त्याग), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (लालच न करना)। और- शौच (बाह्यशुद्धि), सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान (उपासना) ये नियम कहलाते हैं।

मनुने कहा है—

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥

अर्थात्- केवल नियम या शौचादि ईश्वर प्रणिधान पर्यन्त मात्र ही का आचरण अपर्याप्त है। अहिंसा, सत्य आदि पांच यमोंका भी सदा आचरण अवश्य करें। नियमोंका आचरण करें पर यमोंको छोड दें तो मनुष्य पतित रहेगा अशुद्ध होगा, रोगका शिकार बनेगा, वातादि दोषरूप रोगबीज बोयेगा।

आजकल जो फुटबाल, क्रिकेट, हाकी, टेनिस इत्यादि खेलन में ही पर्याप्त व्यायाम होता है ऐसा कहते हैं, वह गलत है। इससे आन्तरिक शक्ति क्षीण होजाती है। क्योंकि इनसे स्पर्धा (ईर्ष्या) आदि बढती है। इस आन्तरिक नुकसानके अलावा बाह्य अंगोंका व्यर्थ खतरा है। किसी उन्नतिके काममें देश या समाजोद्धारकी बातोंमें भले ही प्राणतक दे दें पर विना उद्देश्य केवल ठाठ बाठके लिए शरीरके अंगोंका खतरा मोल लेना मूर्खता है।

और दण्डबैठकादिमें भी पहलवान लोग अति कर देते हैं इससे हृदय कमजोर होकर आयु क्षीण होती है। इसका पूरा पूरा अनुभव हमें है। दण्ड बैठक आदि व्यायाम बहुत सावधानीसे करना। और शक्तिके अनुसार भी।

आसनोंके व्यायामका सिद्धान्त है खिचाव जैसे एक रबडकी नली (Tube) में पानी भरकर उसे खींचकर फिर छोड देनेसे इसके अन्दरका पानी जोरसे बहते हुये नलीको साफ कर देता है। इसी तरह नाडियोंमें बहता हुआ रक्त भी शरीरके प्रत्येक अंगोंपर खिचाव आनेसे उन स्थानोंको शुद्ध करता है। यहाँ भी प्रश्न उठता है कि, क्या खतरा इसमें नहीं ? है तो सही खतरा, सबमें है, भोजनमें

भी है। परन्तु आसनोंके समान देहादिको पवित्र रखनेवाला व्यायाम और कोई नहीं हैं। व्यायाम (वि+आ+आयाम) शरीरको अच्छीतरह अपने काबूमें रखना यह इसका अर्थ है। स्नानके बाद आसनका व्यायाम करना अच्छा है इसी लिए स्नान प्रकरणके बाद व्यायाम प्रकरण लिया है।

अगले सूत्रमें स्वास्थ्यधर्म रक्षान्तर्गत शरीरपरक और साधन बतायेंगे।

शुद्धसात्विकभोजनम् ॥ ८ ॥

भोजन सब जानते हैं कि अत्यावश्यक है और करते हैं सब भोजन। परन्तु क्या खायें क्या न खायें इसका ठीक पता न रहनेसे बहुत रोगी बने हुये हैं। इसलिये सूत्रमें शुद्ध और सात्विक शब्द है। इसमें शुद्ध भोजनं सात्विक भोजनं दोनों अर्थ होते हैं। शुद्ध शब्द इसलिये जोडा है कि,

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।"

अर्थात् आहारके शुद्ध होनेसे शरीरके अन्दर सत्त्व या सूक्ष्म प्राणशक्तियां जो होती हैं वे शुद्ध बन जाती हैं। इनके शुद्ध होनेसे स्मृति या बुद्धि या मन शुद्ध होता है। इसलिये हमारे पूर्वज इसकी ओर विशेष ध्यान दिया करते थे। भगवद्गीतामें कहा है।

आयुस्सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

आहारः सात्विकाः प्रोक्ताः- इत्यादि- अर्थात् आयुको बढानेवाला जो घी आदि (आयुर्वै घृतं- ऐसा शतपथमें कहा- "डालडा" आदि नहीं) सत्वको बढानेवाला, (जैसे ऊपर कहा) आरोग्यको बढानेवाला, सुख और प्रीति बढानेवाला, यह सात्विक आहार होते हैं। इनके विरुद्ध भोजन करनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होती। और मनुष्य अवश्य रोगी होता है। ये सभी अल्पाहार या शाकाहारमें ही घटते हैं मांस मछली आदिमें नहीं।

यहाँ आयुर्वेदके महाविद्वान् वाग्भट्ट के साथ जो घटना हुई वह महत्त्वपूर्ण होनेसे दी जाती है। कहते हैं कि एक समय धन्वन्तरी मुनिने, जो मर चुके थे, रातमें एक पक्षीके रूपमें आकर यह जाननेका प्रयत्न किया, कि वैद्य लोगोंने अपने उपदेशोंका ग्रहण किया या नहीं। उस पक्षीने एक वैद्य विद्वन्मण्डलीके पीछे एक स्थानमें बैठकर ऐसा शब्द किया कि, मानो उससे यह अर्थ निकल सके। कि कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्, अर्थात्- नीरोगी कौन होते हैं। विद्वन्मण्डलीने ध्यान नहीं दिया। निराशासे पक्षी उडकर वाग्भट्टके आंगनमें एक पेडपर बैठकर फिर कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्, ऐसा शब्द किया। इस शब्दको वाग्भट्ट सुनते ही समझ गया कि यह आचार्यके शब्द हैं। फौरन उसने उत्तर दिया कि, ऋतभुक्, हितभुक्, मितभुक्, पक्षी तृप्त होकर चला गया। खैर इस कथासे Aesop's fables या जातक कथाओंके समान यह सार निकाल सकते हैं कि, जो ऋतभुक्, हितभुक् और मितभुक् होता है वह अरुक् अर्थात् नीरोगी होता है। यह ऋतभुक् क्या है देखें।

दक्षिण प्रान्तोंमें एक अच्छी प्रथा है कि, उपनयन (विद्या ग्रहण) करते समय यह सिखाते हैं कि प्रतिदिन दोनों समयके भोजनमें थाली या पत्तलके चारों ओर परिषेचन (पानी-छिडकना) करना। और उस परिषेचनके समय यह मंत्र "ऋतेन त्वा सत्येन परिषिञ्चामि"। ऐसा मंत्र बोलकर बाद थोडा थोडा भोजन लेकर "प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा," इन मंत्रोंसे पहले खाकर बाद पेट भर भोजन करते हैं। इसका रहस्य बहुत महत्त्वका है। गीतामें जो "सुखप्रीतिविवर्धनाः" कहा है उसका आचरण इसमें है। सबसे पहले भोजन करनेवाला यह कहता है कि "हे अन्न! तुम्हारी परिधि ऋत और सत्य है। अर्थात्- परमात्माके उपदेश किये हुये नियमानुसार और सत्याचरणसे तुम्हें कमाया है। बेईमानी करके भ्रष्टाचार करके, अन्याय और चोरी करके, दूसरोंको दुःख देकर, नहीं कमाया। ऐसे जो तुम हो मेरे अन्दरके प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान, इन शक्तियोंको, बढानेवाले हो। यह सब परब्रह्म परमात्माको मैं अर्पण करता हूँ। इतनी पवित्र भावनाओंके साथ ऋतादि आचरणसे कमाया हुआ अन्न खानेवाला ऋतभुक्, अरुक्, अर्थात् नीरोग होनेमें क्या सन्देह है? यह हुआ ऋतभुक्का अर्थ. अब हितभुक्- इस तरहके अन्नमें भी अपने स्वभावके अनुसार जिससे अपने हित साधित हो उसे खायें। और अपने लिये जो जो माफिक न आये उसे न खावें। और चिन्ताके साथ कभी भी भोजन न करना, हमेशा सन्तोषसे खाना। यह भी अरुक् होनेका साधन है। अब मितभुक् अर्थात्- बेहद न खाना जितनेसे पेट भरे उतनेसे कुछ कम खाना। तब नीरोगावस्था होती है।

भोजनके समय पानी पीनेके विचारमें कोई कुछ कोई

कुछ कहते हैं। इसमें सार कुछ नहीं जब अन्दरसे पानी पीनेकी इच्छा होती है तब पी लें।

अगले सूत्रमें और साधन बताते हैं।

सुनिद्रा ॥ ९ ॥

अच्छी निद्रा भी आवश्यक है निरोगताके लिये। सब अर्जुनके समान गुडाकेश (निद्राको जीतनेवाला) नहीं हो सकते। सुनिद्रासे सब अङ्ग तन्दरुस्तावस्थामें रहते हैं। सुनिद्राका अर्थ सुषुप्ति लानेवाली निद्रा। ऐसी निद्रा केवल चार पांच घण्टेकी पर्याप्त है। इस सुनिद्राके लिये हमने ज्ञान और रक्षाधिकारमें जो बातें बताई हैं उनके अनुसार चलनेसे आसानीसे सुषुप्ति लानेवाली निद्रा आजाती है। क्योंकि मन पवित्र रहता है। आजकल जैसे धन कमानेकी चिन्तासे और अन्य चिन्तासे, कोई सिनेमा देखनेसे, कोई अन्य वासनासे अपनी निद्राको बिगाड ले, तो रोग क्यों न हो ?

स्वास्थ्यधर्म रक्षान्तर्गत इस प्रकरणमें निम्नलिखित बातोंका उल्लेख करना अप्रासङ्गिक नहीं। क्योंकि यह सबके लिये खास करके विद्यार्थियोंके लिये लाभदायक है। ये बातें गुरुके, अपने शिष्योंके प्रति उपदेश है। उपनयनके समय जब विद्यार्थी विद्या ग्रहण करनेके लिये गुरुके पास आता है तब ये उपदेश दिये जाते हैं। जो स्वस्थताको लाते हैं। क्योंकि ब्रह्मचारीके जीवनमें स्वास्थ्यके न रहनेसे विद्या ग्रहण न होगा। यह हमारे पूर्वाचार्योंका सुदृढ अभिप्राय था। इसलिये इन बातोंका अभ्यास करा देते और ब्रह्मचारी २५, ३६ या ४५ वर्षकी आयुतक अखण्ड ब्रह्मचर्यसे वज्रके समान देहवाले बन जाते। उपदेश निम्न प्रकार है।

संस्कृत	हिन्दी
आपो अशाना—	केवल पानी पी, अन्य मादकादि पेय नहीं।
कर्म कुरु—	सदा किसी न किसी पवित्र काममें लगे रहो।
दिवा मा स्वाप्सीः—	दिनमें मत सोओ (दिनमें सोनेसे वीर्यका नाश हो जाता है। देह भारी होता है, रोग होता है।)
क्रोधाऽनृते वर्जय—	क्रोध और झूठ बोलना आदि छोड दो (क्रोध और झूठसे मन बिगड जाता है, आत्मा बिगडती है, प्राण बिगडता है, रोग होता है।)
मैथुनं वर्जय—	स्त्री सहवासको छोडो (आठ प्रकारका स्त्री सहवास बताया है। स्त्रीका स्मरण, उसके गुणावगुणगान, उसके साथ खेलना, उसको छूना, उसके साथ एकान्तमें भाषण करना, इत्यादि।) (सहशिक्षाके पक्षमें रहनेवाले महानुभाव इसकी ओर ध्यान दें) इन आठ प्रकारके सहवाससे मन कितना बिगड जाता है इसका वर्णन करना कठिन है। इन बातोंसे मन बिगड जाता है वातदोष सोराविष पैदा हो जाता है, विद्यार्थी रोगग्रस्त हो जाते हैं। न केवल उनका जीवन नष्ट होता है परन्तु देशका अकल्याण भी होता है।
अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रा जागरणं निन्दालोभ-मोहभयशोकान्वर्जय—	अतिस्नान, अतिभोजन, अतिनिद्रा, अतिजागरण, पर-निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक, इत्यादिको छोड दो। (क्योंकि इससे वातदोष पैदा हो जाता है।)

४०६ अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
मयेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
४०७ राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आसाते ॥ ५ ॥
४०८ ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥
४०९ गोमद्दु षु नासत्या ऽश्वावद् यातमश्विना ।
नर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥
४१० न यत् परो नान्तर आदधर्षद् वृषण्वसू ।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥

अर्थ— [४०६] हे (ऋतावृधा मित्रावरुणा) ऋतको बढानेवाले मित्र और वरुण ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं सोमः सुतः) यह सोम निचोडकर तैयार किया गया है, अतः (इह) यहां आकर (मम हवं श्रुतं इत्) मेरी प्रार्थनाको अवश्य सुनो ॥ ४ ॥

[४०७] (राजाना) अत्यन्त तेजस्वी (अन् अभिद्रुहा) किसीसे द्रोह न करनेवाले ये मित्र और वरुण (सहस्रस्थूणे उत्तमे ध्रुवे सदसि) हजार खम्भोंवाले उत्तम और दृढ घरमें (आसाते) बैठते हैं ॥ ५ ॥

[४०८] (सम्राजा) अत्यन्त तेजस्वी (घृतासुती) घृतकी आहुति स्वीकार करनेवाले (आदित्या) रसका आदान करनेवाले (दानुनः पती) दान देनेवालोंके पालन करनेवाले (ता) वे दोनों मित्र और वरुण (अनवह्वरं सचेते) कुटिलता रहित मनुष्यके पास जाते हैं ॥ ६ ॥

१ ता अनवह्वरं सचेते— वे दोनों मित्र और वरुण देव कुटिलतासे रहित उपासकके पास जाते हैं ।

[४०९] हे (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले (नासत्या) सत्यपालक (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनों (गोमत् अश्वावत्) गायों और घोडोंसे पूर्ण (नृपाय्यं वर्तिः) नेताओंसे पालन करनेयोग्य घरके पास (सु यातं) भलीभाँति जाओ ॥ ७ ॥

[४१०] (यत्) जिसे (वृषण्वसू) हे धनकी वर्षा करनेवाले अश्विनौ ! (दुःशंसः रिपुः) बुरी बातें कहनेवाला शत्रुभूत (मर्त्यः) मानव (न परः न अन्तरः) न पराया न अन्दरका हमारे ऊपर (आदधर्षत्) आक्रान्त करनेका साहस कर सके ॥ ८ ॥

भावार्थ— अत्यन्त तेजस्वी और किसीसे भी द्रोह न करनेवाले ये मित्र और वरुण ऐसे यज्ञ मण्डपमें बैठते हैं, जो हजार खम्भोंवाला, उत्तम और दृढ होता है । ऐसे यज्ञ मण्डपमें बैठकर ये दोनों सोम पीते हैं और उपासककी प्रार्थनाको सुनते हैं ॥ ४-५ ॥

ये दोनों देव मित्र और वरुण अत्यन्त तेजस्वी रस देनेवाले और दानियोंका पालन करनेवाले हैं । वे दोनों देव कुटिलतासे रहित मनुष्यके पास ही जाते हैं, कपटीके पास नहीं जाते ॥ ६ ॥

हे शत्रुको रुलानेवाले सत्यके रक्षक अश्विदेवो ! तुम दोनों गौओं और घोडोंसे युक्त तथा वीरों द्वारा पालन करनेयोग्य हमारे घरके पास आओ । जिससे, हे धन देनेवाले देवो ! हमारे अन्दरका अथवा बाहरका कोई भी दुष्ट शत्रु हमपर आक्रमण करनेके लिये समर्थ नहीं होगा ॥ ७-८ ॥

४११ ता नु आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥

४१२ इन्द्रो अङ्ग महद् भय—मभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥

४१३ इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥

४१४ इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १२ ॥

४१५ विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ १३ ॥

अर्थ— [४११] हे (धिष्ण्या अश्विना) उच्चपदके योग्य अश्विदेवो ! (नः) हमारे लिए (वरिवोविदं) धनको बढानेहारे (पिशंगसंदृशं) सुवर्णयुक्त होनेके कारण पीले रंगवाली (रयिं) सम्पत्तिको (ता आ वोळ्हं) वे तुम दोनों इधरले आओ ॥ ९ ॥

[४१२] हे (अंग) प्रिय ! (स्थिरः विचर्षणिः सः इन्द्रः) युद्धमें स्थिर रहनेवाला, बुद्धिमान् वह इन्द्र (अभीषत्) शत्रुओंको भयभीत करता है और उनके (महद् भयं अप चुच्यवत्) बडे भयको दूर करता है ॥ १० ॥

[४१३] यदि (इन्द्रः नः मृळयाति) इन्द्र हमें सुखी करे, तो (नः पश्चात् अघं न नशत्) हमें पीछेसे पाप नष्ट न करे और (पुरः नः भद्रं भवाति) आगेसे हमें कल्याण प्राप्त हो ॥ ११ ॥

१ इन्द्रः नः मृळयाति— यदि इन्द्र हमें सुखी करे तो—
२ नः पश्चात् अघं न नशत्— हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता, तथा
३ पुरः नः भद्रं भवाति— हमें सदा कल्याण प्राप्त हो सकता है ।

[४१४] (शत्रून् जेता विचर्षणिः इन्द्रः) शत्रुओंको जीतनेवाला, बुद्धिमान् इन्द्र हमें (सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि) सब दिशाओंसे (अभयं करत्) निर्भय करे ॥ १२ ॥

१ इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः अभयं करत्— इन्द्र सभी दिशाओंसे हमें निर्भय करे ।

[४१५] हे (विश्वे देवासः) सम्पूर्ण देवो ! (आ गत) आओ (इदं बर्हिः आ नि षीदत) इस यज्ञमें आकर बैठो और (मे इमं हवं आ शृणुत) मेरी इस प्रार्थनाको सुनो ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे प्रशंसाके योग्य अश्विनौ ! तुम दोनों हमें ऐसी सम्पत्ति दो कि जिसमें सुवर्ण बहुत हो और जो धन बढानेमें समर्थ हो ॥ ९ ॥

युद्धमें सदा स्थिर रहनेवाला बुद्धिमान् वह इन्द्र शत्रुओंको भयभीत करता है और उनके द्वारा होनेवाले भयको दूर करता है ॥ १० ॥

जिस उपासककी रक्षा इन्द्र करता है, उसे पाप नष्ट नहीं कर सकते , वह सदा कल्याण प्राप्त करता है ॥ ११ ॥
वह इन्द्र शत्रुओंको जीतनेवाला, बुद्धिमान् है । वह हमें उपासकोंको सब दिशाओंसे भयरहित करे ॥ १२ ॥

४१६ तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।
एतं पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥

४१७ इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥

४१८ अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥

४१९ त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥

अर्थ— [४१६] (शुनहोत्रेषु) पवित्र करनेवाले यज्ञोंमें (मत्सरः) आनन्द देनेवाला (अयं तीव्रः मधुमान्) यह तीक्ष्ण और मीठा सोमरस (वः) तुम्हारे लिए तैयार किया गया है, तुम सब (एतं) आओ और (काम्यं पिबत) इच्छानुसार पीओ ॥ १४ ॥

[४१७] (पूषरातयः) पुष्टिको देनेवाले (इन्द्रज्येष्ठाः मरुद्गणाः) इन्द्रको बडा माननेवाले मरुत् और दूसरे (देवासः) देवगणो ! (विश्वे) तुम सब (मम हवं श्रुत) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ १५ ॥

[४१८] (अम्बितमे) हे अत्यन्त श्रेष्ठ माता (नदीतमे) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करानेवाली तथा (देवितमे) अत्यन्त तेजस्विनि (अम्ब सरस्वति) माता सरस्वती ! हम (अप्रशस्ता इव स्मसि) अत्यन्त निन्दनीयके समान हैं, इसलिए (नः प्रशस्तिं कृधि) हमें यशसे युक्त कर ॥ १६ ॥

१ अम्ब सरस्वति ! अप्रशस्ता स्मसि, नः प्रशस्तिं कृधि— हे माता सरस्वती ! हम निन्दनीय हैं, अतः तू हमें प्रशंसाके योग्य कर ।

[४१९] हे (सरस्वति) सरस्वती ! (देव्यां त्वे) तेजसे युक्त तुझमें (विश्वा आयूंषि श्रिता) सब आयु आश्रित हैं, तू (शुनहोत्रेषु मत्स्व) पवित्रकारक यज्ञोंमें आनन्दित हो, हे (देवि) देवि सरस्वति ! तू (नः प्रजां दिदिड्ढि) हमें प्रजा दे ॥ १७ ॥

१ देव्यां विश्वा आयूंषि श्रिता— इस देवी सरस्वतीमें सभी आयु आश्रित हैं ।

भावार्थ— हे विश्वे देवो ! इस यज्ञमें आओ और तुम्हारे लिए निचोडे गए इस मीठे और आनन्ददायक रसको इच्छानुसार पीओ और हमारी प्रार्थनाओंको सुनो ॥ १३-१४ ॥

मरुद्गण और अन्य देवगण इन्द्रको ही सबसे बडा मानते हैं । इन्द्र सबसे वीर और श्रेष्ठ होनेके कारण सब देव इसकी आज्ञामें चलते हैं । ये सब देव मेरी प्रार्थना सुनें ॥ १५ ॥

यह सरस्वती देवी अत्यन्त श्रेष्ठ निर्माता है । मनुष्यको उत्तम बनाती है । इसके उपासकको अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होता है और वह तेजस्वी होता है । यह सरस्वती सबकी माता है । दुष्ट मनुष्य भी सरस्वतीकी कृपा पाकर सज्जन और विद्वान् बन जाता है ॥ १६ ॥

इस सरस्वती देवीमें सभी तरहके अन्न और आयु आश्रित हैं । जो सरस्वती देवीकी उपासना करता है, वह हर तरहके अन्नोंसे समृद्ध होता है और उन अन्नोंको खाकर वह दीर्घायु प्राप्त करता है, जो सरस्वतीकी उपासना करते हैं वे दीर्घायुसे युक्त होते हैं और उत्तम सन्तान प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥

४२० इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥
४२१ प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥
४२२ द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥
४२३ आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥

[४२]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- शकुन्तः (= कपिञ्जल-रूपीन्द्रः) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४२४ कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥ १ ॥

अर्थ— [४२०] हे (वाजिनीवति ऋतावरि सरस्वति) अन्न व बलसे युक्त तथा सत्यके मार्गपर चलानेवाली सरस्वती देवी ! (गृत्समदा) निरभिमानी उपासक (देवेषु प्रिया या मन्म) देवोंको प्रिय लगनेवाले जिन स्तोत्रोंको (ते जुह्वति) तेरे लिए समर्पित करते हैं, (इमा ब्रह्म जुषस्व) उन इन स्तोत्रोंको तू सुन ॥ १८ ॥

[४२१] हे (शंभुवा) कल्याण करनेवाली द्यावा और पृथिवी देवियो ! हम (युवां हव्यवाहनं अग्निं च) तुम दोनों और हविको ले जानेवाले अग्निकी (आ वृणीमहे) कामना करते हैं, तुम दोनों (यज्ञस्य प्र एतां) हमारे यज्ञकी तरफ आओ ॥ १९ ॥

[४२२] (द्यावा पृथिवी) द्यु और पृथिवी दोनों देवियां (अद्य) आज (सिध्रं दिविस्पृशं) सुखके साधक और आकाशको छूनेवाले (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (देवेषु यच्छतां) देवोंतक पहुंचायें ॥ २० ॥

[४२३] (अद्रुहा) हे द्रोह न करनेवाली द्यु और पृथिवी देवियो ! (अद्य इह) आज यज्ञमें (सोमपीतये) सोम पीनेके लिए (यज्ञियाः देवाः) पूजाके योग्य (वां उपस्थं आ सीदन्तु) तुम्हारे पास ही आकर बैठें ॥ २१ ॥

[४२]

[४२४] (कनिक्रदत्) बार बार शब्द करता हुआ तथा (जनुषं प्रब्रुवाणः) मनुष्यको उपदेश देता हुआ यह शकुनि (वाचं इयर्ति) उत्तम वाणीको उसी प्रकार प्रेरित करता है, जिस प्रकार (अरिता नावं इव) मल्लाह नावको । हे (शकुने) पक्षी ! (सुमंगलश्च भवासि) तू कल्याणकारक हो, (काचित् अभिभा) कोई आक्रमणकारी शत्रु (त्वा विश्व्या मा विदत्) तुझे चारों ओरसे न घेरे ॥ १ ॥

१ जनुषं प्रब्रुवाणः वाचं इयर्ति— परिव्राजक मनुष्योंको उपदेश देता हुआ वेदवाणीको सर्वत्र प्रचार करता है ।

भावार्थ— यह सरस्वती अन्न और बलसे युक्त तथा अपने उपासकोंको सत्य मार्गपर चलानेवाली है । निरभिमानी व्यक्तिकी उपासनासे यह देवी प्रसन्न होती है ॥ १८ ॥

द्यु और पृथिवी तथा अग्नि सब कल्याण करनेवाले हैं । सब इनको चाहते हैं । हमारे बुलाये जानेपर ये हमारे यज्ञमें आवें ॥ १९ ॥

हे द्यु और पृथिवी ! आज इस यज्ञमें सोम पीनेके लिए पूजनीय देव तुम्हारे पास ही बैठें और तुम भी इस सुख प्राप्त करानेवाले यज्ञको देवोंतक पहुंचाओ ॥ २०-२१ ॥

४२५ मा त्वा श्येन उद् वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत् सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥
४२६ अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

[४३]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- शकुन्तः (= कपिञ्जलरूपीन्द्रः) । छन्दः- जगती; २ अतिशक्करी अष्टिर्वा ।]

४२७ प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥ १ ॥

अर्थ—[४२५] हे शकुने ! (त्वा) तुझे (श्येनः मा उत् वधीत्) श्येन पक्षी न मारे (त्वा सुपर्णः मा) तुझे सुपर्ण न मारे, (अस्ता इषुमान् वीरः) अस्त्र फेंकनेवाला धनुर्धारी कोई वीर भी (त्वा मा विदत्) तुझे प्राप्त न करे। (पित्र्यां प्रदिशं अनु) पितरोंकी दिशामें (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (सु मंगलः भद्रवादी इह वद) कल्याण करनेवाला तथा कल्याणकारक वाणीका उच्चारण करनेवाला तू यहां कल्याणकारक वचनोंको ही बोल ॥ २ ॥

१ सुमंगलः भद्रवादी इह वद— कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही यहां उपदेश दे।

[४२६] हे (शकुन्ते) पक्षी (सुमंगलः भद्रवादी) कल्याणकारक और कल्याणमय वचनोंको बोलनेवाला तू (गृहाणां दक्षिणतः अव क्रन्द) घरोंके दाहिनी बाजूमें बैठकर बोल। (नः स्तेनः मा ईशत) हम पर कोई चोर प्रभुत्व न करे, (अघशंसः मा) पापसे युक्त वचनोंको बोलनेवाला भी हम पर शासन न करे, हम (सुवीराः) उत्तम पुत्र पौत्रोंसे युक्त होकर (विदथे बृहत् वदेम) यज्ञमें इस शकुनिकी बडी प्रशंसा करें ॥ ३ ॥

[४३]

[४२७] (शकुन्तयः) ये पक्षी (ऋतुथा) ऋतुओंके अनुसार (वयः वदन्तः) अन्नकी सूचना देते हुए (कारवः) स्तोताओंके समान (प्रदक्षिणित् अभि वदन्ति) दायीं बाजू पर बैठकर बोलें। (सामगा इव) सामको गानेवालेके समान यह पक्षी भी (गायत्रं त्रैष्टुभं उभे वाचौ) गायत्री और त्रिष्टुप् छन्दसे युक्त दोनों वाणियोंको (वदति) बोलता है (च अनु राजति) और शोभित होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें परिव्राजकको शकुनि या पक्षी मानकर कहा है हे परिव्राजक ! तू बार बार बोलता हुआ सब मनुष्योंको उत्तम उपदेश दे और इस प्रकार उत्तम वेदवाणीका सर्वत्र प्रचार करता जा। तू सबका कल्याण करनेवाला हो, तेरा कोई शत्रु न हो, यदि हो तो भी वह तुझे कष्ट न दे ॥ १ ॥

इस परिव्राजकको श्येनके समान दुष्टता करनेवाला कोई मनुष्य न मारे तथा सुपर्णके समान बलशाली तथा शस्त्रास्त्रधारी मनुष्य भी न मारे। पितरोंकी दिशा अर्थात् संकटोंकी अवस्थामें भी परिव्राजक कल्याणकारक वचन ही बोले। कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही मनुष्योंकी सभामें उपदेश दे ॥ २ ॥

हे पक्षी ! तू हमारे घरोंकी दायीं तरफ बैठकर शब्द कर। घरके दायीं तरफ बैठकर पक्षीका शब्द करना शकुन माना जाता है। परिव्राजक भी घरके मनुष्योंके अनुकूल होकर व्यवहार करे और वह हमेशा कल्याणकारक वचनोंको ही बोले। कोई चोर या अकल्याणकारक वचनोंको बोलनेवाला मनुष्य हम पर कभी शासन न करे। ऐसे उत्तम परिव्राजकका हम गुणगान करें ॥ ३ ॥

जिस प्रकार पक्षी आनेवाले ऋतुओंकी सूचना देते हैं उसी प्रकार यह परिव्राजक समयके अनुसार उपदेश दे। ऐसा उत्तम उपदेशक गायत्री और त्रिष्टुप् दोनों छन्दोंसे युक्त वेदमंत्रोंका घोष करता है और इस प्रकार वह सभामें सुशोभित होता है ॥ १ ॥

४२८ उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद ।
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥

४२९ आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४२८] हे (शकुने) पक्षी ! तू (उद्गाता इव) उद्गाता अर्थात् मंत्रोंके उच्चारण करनेवालेके समान (साम गायसि) सामका गान करता है और (ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि) ब्रह्माके पुत्रके समान यज्ञोंमें स्तोत्रोंका उच्चारण करता है । (वृषा वाजी शिशुमतीः अपि इत्य इव) जिस प्रकार एक बलवान् अश्व घोडीके पास जाकर शब्द करता है उसी प्रकार हे (शकुने) पक्षी ! तू (सर्वतः न भद्रं आ वद) चारों ओरसे हमारे कल्याण करनेवाले वचन बोल और हे (शकुने) पक्षी ! (विश्वतः नः पुण्यं आ वद) चारों ओरसे हमारे लिए पुण्यकारक वचन बोल ॥ २ ॥

[४२९] हे (शकुने) पक्षी (यत्) जब तू (उत्पतन्) ऊपर उठते हुए (कर्करिः यथा) कर्करि बाजेके समान (वदसि) बोलता है, तब (आवदन् त्वं) बोलता हुआ तू (भद्रं आ वद) उत्तम कल्याणकारक वचन ही बोल । (तूष्णीं आसीनः) शान्त बैठे रहनेपर भी तू (नः सुमतिं चिकिद्धि) हमारी उत्तम बुद्धियोंको प्रेरित कर । हम भी (सुवीराः) उत्तम वीर पुत्रों और पौत्रोंसे युक्त होकर (विदथे बृहद् वदेम) यज्ञमें उत्तम रीतिसे गुणगान करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार उद्गाता और ब्रह्मा यज्ञोंमें वेदमंत्रोंको बोलता है, उसी प्रकार, हे उपदेशक ! तू उपदेश दे । तू हमारे चारों ओरसे कल्याणकारक और पुण्यकारक वचनोंको बोल ॥ २ ॥

हे परिव्राजक ! उन्नति करता हुआ तू हमेशा उत्तम कल्याणकारक वचन बोल और जब शान्त बैठा हो तब भी हमारी उत्तम बुद्धियोंको उत्तम मार्गकी तरफ प्रेरित कर ॥ ३ ॥

॥ इति द्वितीयं मण्डलम् ॥

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

तृतीय-मण्डल

[१]

[ऋषिः- (गाथिनो विश्वामित्रः) । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

१ सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद् युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥ १ ॥

२ प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित् तवसे गातुमीषुः ॥ २ ॥

---

[१]

अर्थ— [१] हे (अग्ने) अग्ने ! तूने (विदथे यजध्यै सोमस्य वह्निं चकर्थ) यज्ञमें, यज्ञ करनेके लिये मुझे सोमका वाहक बनाया है इसलिये मुझे (तवसं वक्षि) बल भी दे । हे (अग्ने) बलके पुत्र ! मैं (दीद्यत् देवान् अच्छ) प्रकाशमान् होकर देवोंको लक्ष्य कर (अद्रिं युञ्जे, शमाये, तन्वं जुषस्व) पत्थरको जोडता हूँ और स्तुति करता हूँ तू अपने शरीरकी पुष्टिके लिए इस सोमरसका सेवन कर ॥ १ ॥

[२] (समिद्भिः नमसा अग्निं दुवस्यन्) समिधाओंसे और हव्यसे अग्निको प्रसन्न करते हुए हमने (प्राञ्चं यज्ञं चकृमः गीः वर्धतां) भलीभाँति यज्ञ किया है अतः हमारी वाणी वृद्धिको प्राप्त हो । (दिवः कवीनां विदथा शशासुः) स्तोताओंको यज्ञ करना सिखाया है अतः (गृत्साय तवसे गातुं ईषुः चित्) स्तुतिके योग्य तथा बलवान् इस अग्निका यश स्तोतालोग गानेकी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— यह अग्नि जिसको यज्ञमें सोम निचोडनेके लिए तैय्यार करता है, उसे बलवान् भी बनाता है, फिर उस तैय्यार किए गए सोमका सेवन करता है ॥ १ ॥

उत्तम मनसे समिधाओं और हव्योंके द्वारा अग्निको प्रसन्न करते हुए यज्ञ करनेसे मनुष्यकी वाणीमें उत्साह बढता है और वह शुद्ध होती है । क्योंकि यज्ञोंमें स्तोत्र बोले जाते हैं और स्तोत्र देवोंके और दूरदर्शी विद्वानोंके होते हैं ॥ २ ॥

३ मयो॑ दधे मेधि॒रः पू॒तद॑क्षो॒ दिवः॑ सु॒बन्धु॑र्जनु॒षा पृ॑थि॒व्याः ।
अवि॑न्दन्नु दर्श॒तम॒प्स्व१॒॑न्त॒र्देवा॑सो अ॒ग्निम॒पसि॑ स्व॒सॄणा॑म् ॥ ३ ॥

४ अव॑र्धयन् त्सु॒भगं॑ स॒प्त य॒ह्वीः श्वे॒तं ज॑ज्ञान॒मरु॑षं म॒हित्वा ।
शि॒शुं न जा॒तम॒भ्या॑रु॒रश्वा॑ दे॒वासो॑ अ॒ग्निं ज॑नि॒मन् वपु॑ष्यन् ॥ ४ ॥

५ शु॒क्रेभि॑रङ्गै॒ रज॑ आततन्वा॒न् क्रतुं॑ पुना॒नः क॒विभि॑ः प॒वित्रैः॑ ।
शो॒चिर्व॑सा॒नः पर्या॑यु॒रपा॑ श्रि॒यो मि॑मीते बृह॒तीर॑नू॒नाः ॥ ५ ॥

६ व॒व्राजा॑ सी॒मन॑दतीर॒दब्धा॒ दिवो॑ य॒ह्वीर॑वसा॒ना अ॑नग्नाः ।
स॒ना अत्र॑ युव॒तयः॑ सयो॒नी॒रेकं॒ गर्भं॑ दधिरे स॒प्त वा॑णीः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३] यह अग्नि (मेधिरः पूतदक्षः जनुषा सुबन्धुः) मेधावान् पवित्र बलशाली एवं जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु है तथा (दिवः पृथिव्याः मयः दधे) द्युलोक और भूमिमें सुख स्थापित करता है। (देवासः) देवोंने (स्वसॄणां अप्सु अन्तः) बढनेवाली नदियोंके जलमें गुप्तरूपसे स्थित उस (दर्शतं अग्निं) दर्शनीय अग्निको (अपसि अविन्दन्) अपने कार्यके लिये प्राप्त किया ॥ ३ ॥

[४] (सुभगं श्वेतं महित्वा अरुषं) उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त, उज्ज्वल, महिमावान् प्रदीप्त अग्निके (जज्ञानं सप्त यह्वीः अवर्धयन्) उत्पन्न होते ही, उसे सात नदियोंने संवर्धित किया। (न अश्वाः जातं शिशुं अभ्यारुः) जिस प्रकार घोडी नव जात शिशुकी ओर दौडती है उसी प्रकार (देवासः अग्निं जनिमन् वपुष्यन्) देवोंने अग्निको उत्पन्न होते ही दीप्तिमान् किया ॥ ४ ॥

[५] (शुक्रेभिः अङ्गैः रजः आततन्वान्) शुभ्रवर्ण तेजके द्वारा लोकोंको व्याप्त कर यह अग्नि (क्रतुं) कर्म करनेवाले भक्तको अपनी (कविभिः पवित्रैः पुनानः) बुद्धि और पवित्र तेजके द्वारा पवित्र करके, तथा (शोचिः परिवसानः) ज्वालाओंके कपडोंको पहनकर (अपां, आयुः बृहतीः अनूनाः श्रियः मिमीते) स्तोताको अन्न, प्रभूत और सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ५ ॥

[६] (अन्-अदतीः) हिंसा न करनेवाले (अ-दब्धाः) तथा स्वयं भी हिंसित न होनेवाले जलोंको यह अग्नि (सीं वव्राज) चारों ओरसे घेर लेता है। (अ-वसानाः अ-नग्नाः) वस्त्र न पहननेपर जो नग्न नहीं रहती हैं, ऐसी (सनाः युवतयः) प्राचीनकालसे यौवनावस्थामें रहनेवालीं (सयोनीः) एक ही स्थानमें रहनेवाली (दिवः वाणीः) दिव्यशब्दोंसे युक्त (सप्त यह्वीः) सात नदियां (एकं गर्भं दधिरे) एक अग्निके गर्भको धारण करती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सबका भाई है अतः प्राणियोंके लिए सर्वत्र सुख देता है। यह प्रथम जलमें गुप्त रूपसे विद्यमान था, पश्चात् देवोंने इसे अपने कामके लिए ढूंढ निकाला ॥ ३ ॥

उत्पन्न होते ही इस अग्निको सातों नदियां बढाती हैं और देवगण इसे प्रकाशित करते हैं।

सप्त नदियां— पंच ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि।
अग्नि— प्राणाग्नि; देव— इन्द्रियें ॥ ४ ॥

यह अग्नि उत्पन्न होकर सभी लोगोंको प्रकाशित कर देता है, तथा अपने पवित्रताके गुणसे सब जगह पवित्र करता है, तथा अपने भक्तोंको सब तरहका ऐश्वर्य देता है ॥ ५ ॥

अग्नि चारों ओरसे जलोंको घेरे रहता है। तथा जल भी इस अग्निको गर्भमें धारण करते हैं। बिजली मेघोंको चारों ओरसे घेरे रहती है और उनके बीचमें चमकती है ॥ ६ ॥

७ स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥ ७ ॥
८ बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद् दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्रोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ ८ ॥
९ पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद् वि धेनाः
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥ ९ ॥
१० पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत् पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्येह नि पाहि ॥ १० ॥

अर्थ—[७] (मधूनां स्रवथे, घृतस्य योनौ) जलके बरसनेपर, जलके उत्पत्तिस्थान अन्तरिक्षमें (अस्य संहतः विश्वरूपाः स्तीर्णाः अस्थुः) इस अग्निकी इकट्ठी हुई हुई नानावर्णोंवाली, सर्वत्र फैली हुई किरणें ठहरी रहती हैं। उस समय (अत्र पिन्वमानाः धेनवः) यहाँ इस पृथ्वीपर सबको पूर्ण करनेवाले तथा प्रसन्नता देनेवाले जल बरसते हैं। इस (समीची, दस्मस्य, मही मातरा) सुन्दर और दर्शनीय अग्निके पृथ्वी और आकाश माता पिता हैं ॥ ७ ॥

[८] (सहसः सूनो बभ्राणः) बलके पुत्र और सबको धारण करनेवाले अग्ने ! तू (शुक्रा रभसा वपूंषि दधानः व्यद्यौत्) उज्ज्वल वेगवान् किरणें धारण करके प्रकाशित होता है। (वृषा यत्र काव्येन वावृधे) बलवान् अग्नि जब स्तोत्रोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है, तब (मधुनः घृतस्य धाराः श्रोतन्ति) अत्यन्त मधुर घृतकी धारायें इसपर गिरती हैं ॥ ८ ॥

[९] अग्निने (पितुः ऊधः जनुषा विवेद) अन्तरिक्षके स्तनस्थानीय जलप्रदेशको अपने जन्मसे ही जान लिया। और (अस्य धाराः धेनाः वि असृजत्) इसके अन्तरिक्षकी जलकी धारा अर्थात् वृष्टिने बिजलीको गिराया। (शिवेभिः सखिभिः दिवः, यह्वीभिः गुहा चरन्तं) अपने शुभकर्ता मित्रों और द्युलोककी जलधाराओंके साथ (गुहा चित् न बभूव) गुहामें स्थित उस अग्निको कोई भी नहीं प्राप्त कर सका ॥ ९ ॥

[१०] यह अग्नि (पितुः च जनितुः गर्भं बभ्रे) पिता और माताके गर्भका पोषण करता है। (च एकः पूर्वीः पीप्यानाः अधयत्) और वही एक वृद्धिको प्राप्त औषधियोंका भक्षण करता है। (सपत्नी मनुष्ये उभे) एक पतिवाली तथा मनुष्योंका हित करनेवाली दोनों द्यावापृथिवी (वृष्णे अस्मै शुचये सबन्धू) बलवान् इस पवित्र अग्निके बन्धु सदृश हैं। हे अग्ने ! तू आकाश और पृथ्वीकी (नि पाहि) अच्छी प्रकारसे रक्षा कर ॥ १० ॥

भावार्थ—जिस समय अन्तरिक्षमें अग्निकी किरणें बिजलीके रूपमें चमकती हैं, तब इस पृथ्वीपर पानी बरसता है। इस जलका पिता द्यु अर्थात् सूर्य और माता पृथ्वी है। क्योंकि सूर्य पानीको खींचकर मेघ बनाता है और पृथ्वी उस जलको धारण करती है ॥ ७ ॥

जब इस अग्निको घीकी धाराओंसे उत्तम प्रकारसे प्रज्ज्वलित करके स्तोत्रोंसे बढाया जाता है, तब यह अग्नि अपनी वेगवान् किरणोंसे सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ ८ ॥

जन्मते ही अग्निने अन्तरिक्षमें संग्रहीत जलोंको जान लिया और उन जलोंको वर्षाके रूपमें नीचे गिराया। पर इस वर्षाके गिरानेवालेको कोई पा न सका ॥ ९ ॥

यह अग्नि द्यु और पृथ्वीलोकके गर्भरूप जलोंका पोषण करता है। फिर उन्हीं जलोंसे पुष्ट हुए हुए वन वृक्षोंको खा जाता है। एक सूर्य ही जिनका पति है, ऐसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक इस अग्निकी रक्षा करते हैं और अग्नि भी उन दोनोंकी रक्षा करता है ॥ १० ॥

११ उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धा—ऽऽपो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद् दमूना जामीनामग्निरप्सि स्वसॄणाम् ॥ ११ ॥

१२ अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजाना—ऽपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥ १२ ॥

१३ अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वनां जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥ १३ ॥

१४ बृहन्त इद् भानवो भाऋजीका—अग्निं संचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्त—रपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥ १४ ॥

अर्थ— [११] (महान् अनिबाधे उरौ ववर्ध) यह महान् अग्नि, बाधारहित विस्तारवाली पृथ्वीमें बढता है। वहाँ (हि पूर्वीः यशसः आपः, अग्निं संवर्धयन्ति) बहुत यशवाले घृत अग्निको भली प्रकार बढाते हैं। (ऋतस्य योनौ अग्निः) यज्ञके गर्भ स्थानमें वास करनेवाला अग्नि (जामीनां स्वसॄणां अप्सि दमूनाः अशयत्) परस्पर बहनरूप अंगुलियों द्वारा किए जानेवाले कार्यमें शान्तिपूर्वक रहता है ॥ ११ ॥

[१२] (यः अग्निः जनिता, अपां गर्भः नृतमः) जो अग्नि सबका पिता, जलके अन्दर रहनेवाला, मनुष्योंमें सर्व श्रेष्ठ, (यह्वः समिथे अक्रः न महीनां बभ्रिः) महान् संग्राममें अपराजित अपनी महती सेनाका भरणपोषण करनेवाला, (दिदृक्षेयः भाऋजीकः) सबके देखने योग्य तथा अपने तेजसे प्रकाशित है, उसने ही (सूनवे उस्रियाः उत् जजान) अपने पुत्रवत् प्रिय भक्तोंके लिये प्रकाश उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

१ अग्निः समिथे अक्रः महीनां बभ्रिः उस्रियाः जजान— यह अग्नि संग्राममें अपराजित, बडी बडी सेनाओंका भरणपोषण करनेवाला है, इसीने प्रकाशको पैदा किया।

[१३] (सुभगा वना दर्शतं विरूपं) सौभाग्यशाली अरणीने दर्शनीय विविध रूपवान् तथा (अपां ओषधीनां गर्भं जजान) जल और औषधियोंके गर्भमें रहनेवाले अग्निको उत्पन्न किया। (देवासः चित् पनिष्ठं तवसं जातं) सारे देवता लोग भी स्तुतिके योग्य, बलशाली और तुरन्त उत्पन्न अग्निके पास (मनसा सं जग्मुः) मनसे होकर पहुँचे और (हि दुवस्यन्) उन्होंने अग्निकी सेवा की ॥ १३ ॥

१ उत्तरारणि = पिता। २ अधरारणि = माता।
३ अग्नि = पुत्र या प्राणाग्नि। ४ देव = इन्द्रियें।
५ जल = वीर्य।

[१४] (विद्युतः न शुक्राः) विद्युत्के समान अत्यन्त कान्तियुक्त (बृहन्तः इत् भानवः अपारे ऊर्वे अन्तः) महान् किरणें अगाध समुद्रके बीचमें (अमृतं दुहानाः गुहा इव) अमृतका मन्थन करके गुहाके समान (स्वे सदसि अन्तः वृद्धं भाऋजीकं, संचन्त) अपने घर अन्तरिक्षमें बढते हुये, प्रकाशमान अग्निका आश्रय प्राप्त करती हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि पृथ्वीमें अनेक स्थलोंपर बढता है और घृतकी धारायें इसे बढाती हैं। अंगुलियों द्वारा किए जानेवाले यज्ञके मध्यमें यह पडा रहता है ॥ ११ ॥

यह अग्नि जलके अन्दर रहते हुए सबका भरणपोषण करता है, और अपने तेजसे उपासकोंके लिए प्रकाश उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

अरणियोंने जलोंके अन्दर रहनेवाले अग्निको पैदा किया, तब सब देवता इसके पास पहुंचकर इसकी सेवा करने लगे ॥ १३ ॥

अत्यन्त प्रकाशमान किरणें समुद्रके अन्दर रहती हुई भी अन्तरिक्षस्थ अग्निको घर बराबर बढाती हैं ॥ १४ ॥

१५ ईळे च त्वा यजमानो हविर्भि—रीळे सख्ित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥ १५ ॥

१६ उपक्षेतारस्तव सुप्रणीते ऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुज्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥ १६ ॥

१७ आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान् रथिरो यासि साधन् ॥ १७ ॥

१८ नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौ—दग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥ १८ ॥

अर्थ—[१५] हे अग्ने ! मैं (यजमानः हविर्भिः त्वा ईळे) यजमान हवियोंके द्वारा तेरी स्तुति करता हूँ । (च, सुमतिं निकामः सख्तित्वं ईळे) और अच्छी बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला मैं तेरे साथ बन्धुत्वके लिये प्रार्थना करता हूँ । तू (देवैः जरित्रे अवः मिमीहि) देवोंके साथ मुझ स्तोताकी रक्षा कर । (च दम्येभिः अनीकैः नः रक्ष) और दुर्दम्य तेजसे हमारी रक्षा कर ॥ १५ ॥

१ सुमतिं निकामः सख्तित्वं— उत्तम बुद्धिको चाहनेवाला ही इस अग्निकी मित्रता कर सकता है ।

[१६] हे (सुप्रणीते अग्ने) उत्तम नेता अग्ने ! (तव उपक्षेतारः) तेरे पास रहनेवाले हम (विश्वानि धन्या दधानाः तुज्जमानाः) सम्पूर्ण धनोंको धारण करते हुए तेरे द्वारा पालित पोषित होते हुए हम (सुरेतसा श्रवसा अदेवान् पृतनायून् अभिष्याम) पुष्टिदायक अन्नसे युक्त होकर देवविरोधी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें ॥ १६ ॥

[१७] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (देवानां केतुः आ मन्द्रः अभवः) देवताओंका प्रज्ञापक तू सब प्रकारसे रमणीय है, (विश्वानि काव्यानि विद्वान्) सम्पूर्ण स्तोत्रोंका ज्ञाता तू (मर्तान् दमूना अवासयः) मनुष्योंको उनके अपने अपने घरोंमें बसानेवाला है, तथा (रथिरः साधन् देवान् अनुयासि) उत्तम रथवाला तू देवताओंका हित करते हुए उनका अनुसरण करता है ॥ १७ ॥

१ देवानां केतुः मन्द्रः— यह अग्नि देवोंका प्रज्ञापक और रमणीय है ।

[१८] (अमृतः राजा विदथानि साधन्) अमर और तेजस्वी अग्नि यज्ञ करता हुआ (मर्त्यानां दुरोणे नि ससाद) मनुष्योंके घरमें विराजता है । यह (विश्वानि काव्यानि विद्वान्) सम्पूर्ण स्तोत्रोंका ज्ञाता है । (घृतप्रतीकः, उर्विया अग्निः वि अद्यौत्) घृतके द्वारा प्रदीप्त शरीरवाला विस्तीर्ण अग्नि प्रकाशित होता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे अग्ने ! मैं तेरी स्तुति करता हूँ ताकि मुझे उत्तम बुद्धि, तेरा बन्धुत्व और तेरा संरक्षण मिले ॥ १५ ॥

यह उत्तम नेता अग्नि अपने भक्तोंका हर तरहका धन देकर पालन करनेवाला है । इसके दिए हुए अन्नसे पुष्ट होकर भक्त नास्तिकोंपर विजय प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

यह देवोंका दूत है, और मनुष्योंका निवासक है । यह देवों अर्थात् विद्वानोंका हित करता है ॥ १७ ॥

कभी नष्ट न होनेवाला यह अग्नि यज्ञोंको सिद्ध करता और मनुष्योंके घरोंमें रहता है । घृतसे प्रदीप्त होकर यह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ १८ ॥

१९ आ नो गहि सख्येभिः शिवेभि—र्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥ १९ ॥

२० एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मन्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥ २० ॥

२१ जन्मन्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या—ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ २१ ॥

२२ इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो ररांणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नो ऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥ २२ ॥

अर्थ— [१९] (सरण्यन् महान्) सर्वत्र जानेवाले महान् अग्ने ! तू अपनी (शिवेभिः सख्येभिः महीभिः ऊतिभिः नः आ गहि) मंगलकारी मैत्रीसे और महती रक्षाशक्तियोंसे युक्त होकर हमारे पास आ । (अस्मे बहुलं संतरुत्रं) हमारे लिये विस्तीर्ण, उपद्रव रहित, (सुवाचं भागं यशसं, रयिं कृधि) शोभन स्तुतियुक्त, भजनीय और कीर्तिशाली धनको प्रदान कर ॥ १९ ॥

[२०] (अग्ने) अग्ने ! (पूर्व्याय ते सनानि, नूतनानि एता जनिमा प्र वोचं) पुरातन तेरी सनातन और नवीन सब स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं । (जातवेदाः) सर्वज्ञ तू (जन्मन् जन्मन् निहितः) सब मनुष्योंके बीचमें स्थापित किया गया है, (वृष्णे इमा महान्ति सवना कृता) बलवान् तेरे लिये हमने इन बडे बडे यज्ञोंको किया है ॥ २० ॥

[२१] (जन्मन् जन्मन् निहिताः जातवेदाः) सारे मनुष्योंमें स्थापित हुआ हुआ सर्वज्ञ अग्नि (विश्वामित्रेभिः अजस्रः इध्यते) विश्वामित्रों द्वारा सदा ही प्रदीप्त किया जाता है । (वयं तस्य यज्ञियस्य) हम उस यजनीय अग्निके (भद्रे सौमनसे अपि स्यां) उत्तम मनके अनुकूल रहें ॥ २१ ॥

१ वयं यज्ञियस्य भद्रे सौमनसे स्याम— हम उस पूजनीय अग्निके कल्याणकारी बुद्धिके अनुकूल रहें ।

[२२] हे (सहसावन् सुक्रतो) बलवान्, शोभन कर्म करनेवाले अग्ने ! (त्वं रराणः न इमं यज्ञं देवत्रा धेहि) तू आनन्दित होता हुआ हमारे इस यज्ञको अन्य देवताओंतक ले जा । हे (होतः) देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! (बृहतीः इषः नः प्रयंसि) अत्यधिक अन्न हमें प्रदान कर । तथा हे (अग्ने महि द्रविणं आयजस्व) अग्ने ! महान् पश्वादि युक्त उत्तम धन भी हमें दे ॥ २२ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू मंगलकारी मित्रता और रक्षाशक्तिसे युक्त होकर हमारे पास आ, तथा उपद्रव रहित और कीर्ति देनेवाले धनको प्रदान कर ॥ १९ ॥

यह अग्नि सबसे प्राचीन है, इसलिए सब इसकी स्तुति करते हैं और सब इसे अपने घरमें स्थापित करते हैं और इसमें यज्ञ करते हैं ॥ २० ॥

प्रत्येक मनुष्यमें स्थित यह अग्नि सज्जनों द्वारा प्रदीप्त किया जाता है । हम भी उस अग्निकी श्रेष्ठ बुद्धिके अनुसार चलें ॥ २१ ॥

हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञको तू देवताओंतक पहुंचा और सब तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर ॥ २२ ॥

२३ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ २३ ॥

[२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- जगती ।]

२४ वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥ १ ॥

२५ स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥ २ ॥

अर्थ— [२३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे । (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र और पौत्र वंशकी वृद्धि करनेवाले हों । हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ २३ ॥

१ हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गोसनिं इळाम्— हे अग्ने ! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे ।

२ सा ते सुमतिः अस्मे भूत्— वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ।

[२]

[२४] (ऋतावृधे वैश्वानराय अग्नये) यज्ञकी वृद्धि करनेवाले तथा सबको आगे ले जानेवाले अग्निके लिए हम (घृतं न पूतं) घीके समान पवित्र (धिषणां जनामसि) स्तुतिको प्रकट करते हैं । (मनुषः वाघतः च) मनुष्य तथा अन्य उपासक (द्विता होतारं) दो प्रकारसे विभक्त तथा देवोंको बुलानेवाले अग्निको (धिया) अपनी बुद्धिसे (सं ऋण्वति) उसी प्रकार संवारते हैं जिस प्रकार (कुलिशः रथं न) बढ़ई रथको ॥ १ ॥

[२५] (सः) वह अग्नि (जनुषा) जन्म लेते ही (उभे रोदसी रोचयत्) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको प्रकाशित करता है, (सः मात्रोः) वह अग्नि द्यु और पृथ्वीरूप अपनी दोनों माताओंका (ईड्यः पुत्रः अभवत्) प्रशंसनीय पुत्र है । वह अग्नि (हव्यवाट्) हविको ले जानेवाला (अ-जरः) जीर्णतासे रहित (चनः हितः) अन्नका भण्डार (दूळभः) अवध्य (विभावसुः) प्रदीप्त किरणोंवाला तथा (विशां अतिथिः) प्रजाओंका अतिथि है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू देवोंकी पूजा करनेवालेको इहलोकका ऐश्वर्य प्रदान कर । उन्हें अच्छी और उपजाऊ भूमि दे । साथ ही उत्तम बुद्धि भी प्रदान कर ॥ २३ ॥

यह अग्नि यज्ञका साधक और सबका नेता है । सबको उत्तम मार्गकी तरफ ले जाता है । मनुष्य उसकी पवित्र स्तुति करें । जिस प्रकार घी पवित्र एवं तेजस्वी होता है, उसी प्रकार स्तुति भी पवित्र एवं तेजस्वी हो । स्तोतागण भौतिक और आध्यात्मिक रूपसे दो भागोंमें विभक्त इस अग्निको प्रदीप्त करके सुशोभित करते हैं ॥ १ ॥

यह अग्नि द्यौ और पृथ्वीरूप अपने पिता माताका योग्य और प्रशंसनीय पुत्र है, इसलिए यह जन्म लेते ही उनके यशको फैलाता है । इसी प्रकार सब अपने जीवनमें श्रेष्ठतम कर्म करके अपने मातापिताके यशको फैलायें । वह अग्नि अजर अवध्य, प्रदीप्त किरणोंसे युक्त और प्रजाओंमें अतिथिके समान पूज्य है ॥ २ ॥

२६ क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महा—मत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥ ३ ॥

२७ आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्वयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतु—मग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥ ४ ॥

२८ अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२६] (तरुषः दक्षस्य विधर्मणि) अत्यन्त पराक्रमी और चतुर मनुष्यके यज्ञमें (देवासः) देवगण अपने (क्रत्वा चित्तिभिः) कर्म और ज्ञानसे (अग्निं जनयन्त) अग्निको उत्पन्न करते हैं। (भानुना ज्योतिषा रुरुचानं) अत्यन्त तेजस्वी तेजसे शोभित होनेवाले (महां) इस महान् अग्निकी (वाजं सनिष्यन्) अन्न और बलकी कामना करता हुआ मैं (अत्यं न उप ब्रुवे) घोडेके समान स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥

१ तरुषः दक्षस्य विधर्मणि देवासः क्रत्वा चित्तिभिः अग्निं जनयन्त— पराक्रमी और कुशल मनुष्यके यज्ञमें ही देवगण अपने पराक्रम और ज्ञानोंसे अग्निको उत्पन्न करते हैं।

[२७] (मन्द्रस्य) पूजाके योग्य इस अग्निके, (वरेण्यं अह्वयं ऋग्मियं वाजं) चाहने योग्य, लज्जासे रहित और प्रशंसाके योग्य अन्नको (सनिष्यन्तः) प्राप्त करनेकी इच्छावाले हम (भृगूणां रातिं) भृगुओंको ऐश्वर्य देनेवाले, (उशिजं) कामना करनेवाले (कविक्रतुं) उत्तम ज्ञान और कर्म करनेवाले (दिव्येन शोचिषा राजन्तं) अत्यन्त दिव्य तेजसे प्रकाशित उस अग्निको (आ वृणीमहे) हम अपनाते हैं, स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

१ अह्वयं वाजं ऋग्मियं— लज्जासे रहित मार्गसे कमाया गया अन्न ही प्रशंसाके योग्य होता है।

[२८] (वृक्तबर्हिषः यतस्रुचः जनाः) आसनको बिछाये हुए और स्रुचाओंको हाथमें लिए हुए याजक (सुम्नाय) अपने सुखके लिए (वाजश्रवसं) बल और अन्नसे सम्पन्न (सुरुचं) उत्तम तेजस्वी (विश्वदेव्यं) सभी विद्वानोंका हित करनेवाले (रुद्रं) शत्रुओंको रुलानेवाले (यज्ञानां अपसां दृष्टिं साधत्) श्रेष्ठतम कर्मों एवं यज्ञोंको पूर्ण करनेवाले (अग्निं) अग्निको (इह पुरः दधिरे) यहां इस यज्ञमें आगे स्थापित करते हैं ॥ ५ ॥

१ सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां अपसां अग्निं इह पुरः दधिरे— उत्तम तेजस्वी, सभी विद्वानोंका हित करनेवाले, शत्रुओंको रुलानेवाले, श्रेष्ठतमको करनेवाले अग्निको यज्ञमें आगे स्थापित करते हैं।

भावार्थ— देवगण केवल उसी मनुष्यके यज्ञमें इस अग्निको प्रकट करते हैं, जो पराक्रमी और कुशल होता है। देव अर्थात् विद्वान् ऐसे ही मनुष्यके यज्ञमें जाते हैं और उस यज्ञमें जाकर वे अपने श्रेष्ठ कर्मों और ज्ञानोंसे अग्निको उत्पन्न करते हैं। विद्वान् ज्ञानी ब्राह्मण अपने राष्ट्रमें अपने कर्मों और ज्ञानसे नेताका निर्माण करते हैं, राष्ट्रके यज्ञमें नेताको उत्पन्न करते हैं, तब उस नेताको देखकर सारी प्रजायें बल प्राप्त करनेकी इच्छासे उस नेताकी प्रशंसा करती है, जिस प्रकार कोई वीर उत्तम घोडेको देखकर उसकी प्रशंसा करता है ॥ ३ ॥

जो नेता हो, वह ऐसे ही मार्गसे धन कमाये कि जिसमें लज्जा न रहे, जिस धनको कमाकर उसे छिपाना न पडे। ऐसा ही अन्न प्रशंसनीय है। ऐसे ही अन्नकी प्रजायें भी कामना करें अर्थात् प्रजायें भी उत्तम मार्गसे ही धनको प्राप्त करें। वह अग्रणी उत्तम ज्ञान और कर्म करनेवाला होकर उत्तम दिव्य तेजसे सम्पन्न हों, ऐसे ही अग्रणीको प्रजायें अपनाती हैं, अपना नेता स्वीकार करती हैं ॥ ४ ॥

प्रजायें बल और अन्न देनेवाले, तेजस्वी, सभी विद्वानोंका हित करनेवाले, पर शत्रुओंको रुलानेवाले तथा श्रेष्ठतम कर्मोंको करनेवाले और प्रजाओंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अग्रणीको अपने सुखके लिए हर काममें आगे स्थापित करती हैं। ऐसे उत्तम नेताका सत्कार करनेके लिए प्रजायें हमेशा आसन बिछाये रहती हैं ॥ ५ ॥

' संसारके पुस्तकालयमें ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रंथ है ' । संसारका ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो ऋग्वदमें न हो। दार्शनिक, भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांसारिक आदि सभी विषयोंका समावेश ऋग्वेदमें है। अतः—

यदि आप जानना चाहते हैं

कि

(१) ऋग्वैदिक दार्शनिकता क्या है ?
(२) ऋग्वैदिक समाजशास्त्र क्या है ?
(३) ऋग्वैदिक भौतिकशास्त्र कैसा है ?
(४) ऋग्वैदिक अध्यात्मविद्या क्या है ?
(५) ऋग्वेदका सारांश क्या है ?

तो अवश्य ग्राहक बनिये—

म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर कृत

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(चार भागोंमें)

प्रकाशन कार्य आरंभ हो गया है। मंत्र, अर्थ, भावार्थ तथा हर मण्डलके अन्तमें उस मंडल का सारांश एवं कठिनस्थलोंका स्पष्टीकरण सभी कुछ पठनीय होगा। साइज– डबल क्राऊन ८ पेजी, सुन्दर कागज, पृष्ठ संख्या २५०० से ज्यादा, मूल्य मात्र २०) रु. प्रत्येक भाग, पर—

(१) जो पेशगी धन भेज कर इस ग्रंथके ग्राहक होंगे, उन्हें केवल ६०) में चारों भाग मिल सकेंगे।

(२) जो ग्राहक चारों भाग एक साथ खरीदेंगे, उन्हें इस ग्रंथके कुल मूल्य ८०) रु. पर २० % कमीशन दिया जाएगा।

(३) जो इस ग्रंथके कम से कम ७ ग्राहक बनायेंगे उन्हें लेखकके हस्ताक्षरके साथ चारों भाग मुफ्त भेंटस्वरूप दिए जाएंगे।

विशेष विवरणके लिए लिखें—

व्यवस्थापक—
स्वाध्याय-मण्डल पारडी,
पोस्ट– 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. वलसार]

Regd. No. G. 71

सस्ता संस्करण] [आज ही ग्राहक बनिए

सम्पूर्ण महाभारत

(१८ जिल्दोंमें)

(संस्कृत श्लोक और हिन्दी अनुवाद सहित)

साइज- डबल क्राऊन आठ पेजी, बडा टाइप] [उत्कृष्ट छपाई व कागज, कुल पृ. सं. १२२१६

प्रधान सम्पादक

म. म. डॉ. पं. श्री. दा. सातवलेकर

सटीक एवं सचित्र महाभारतका यह नवीन संस्करण बहुत शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है, जो १८ भागोंमें सम्पूर्ण होगा।

(१) महाभारतका पूरा सेट (१८ भाग) १००) रु. में मिलेगा। इस कीमत पर पुस्तक विक्रेताओं तथा अन्य शिक्षण संस्थाओंको १५ % कमीशन दिया जायगा। डाकव्यय, पेकिंग और रेलभाडा सब ग्राहकको देना होगा।

(२) जो व्यक्तिशः महाभारतका पूरा सेट खरीदना चाहेंगे, उन्हें इस पूरे सेटकी कीमत १००) पर १० % कमीशन दिया जाएगा। डाकव्यय, पेकिंग खर्च और रेलभाडा ग्राहकके जिम्मे रहेगा।

(३) जो व्यक्ति महाभारतके पूरे सेटका अग्रिम मूल्य (Advance) भेजेंगे, उन्हें इस पूरे सेटकी कीमत १००) पर १५ % कमीशन दिया जायगा।

(४) अग्रिम धन (Advance) भेजनेकी सुविधा ३१ अगस्त १९६८ तक ही रहेगी।

अतः आज ही अग्रिम धन भेजकर महाभारतके भागोंके ग्राहक बनकर अल्प-मूल्यमें ही इस ग्रंथरत्नका संग्रह करें।

विशेष विवरणके लिए लिखें।

व्यवस्थापक—

" महाभारत प्रकाशन-विभाग "

पोस्ट- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

जि. बलसाड [गुजरात]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो. 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [बलसाड]